Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

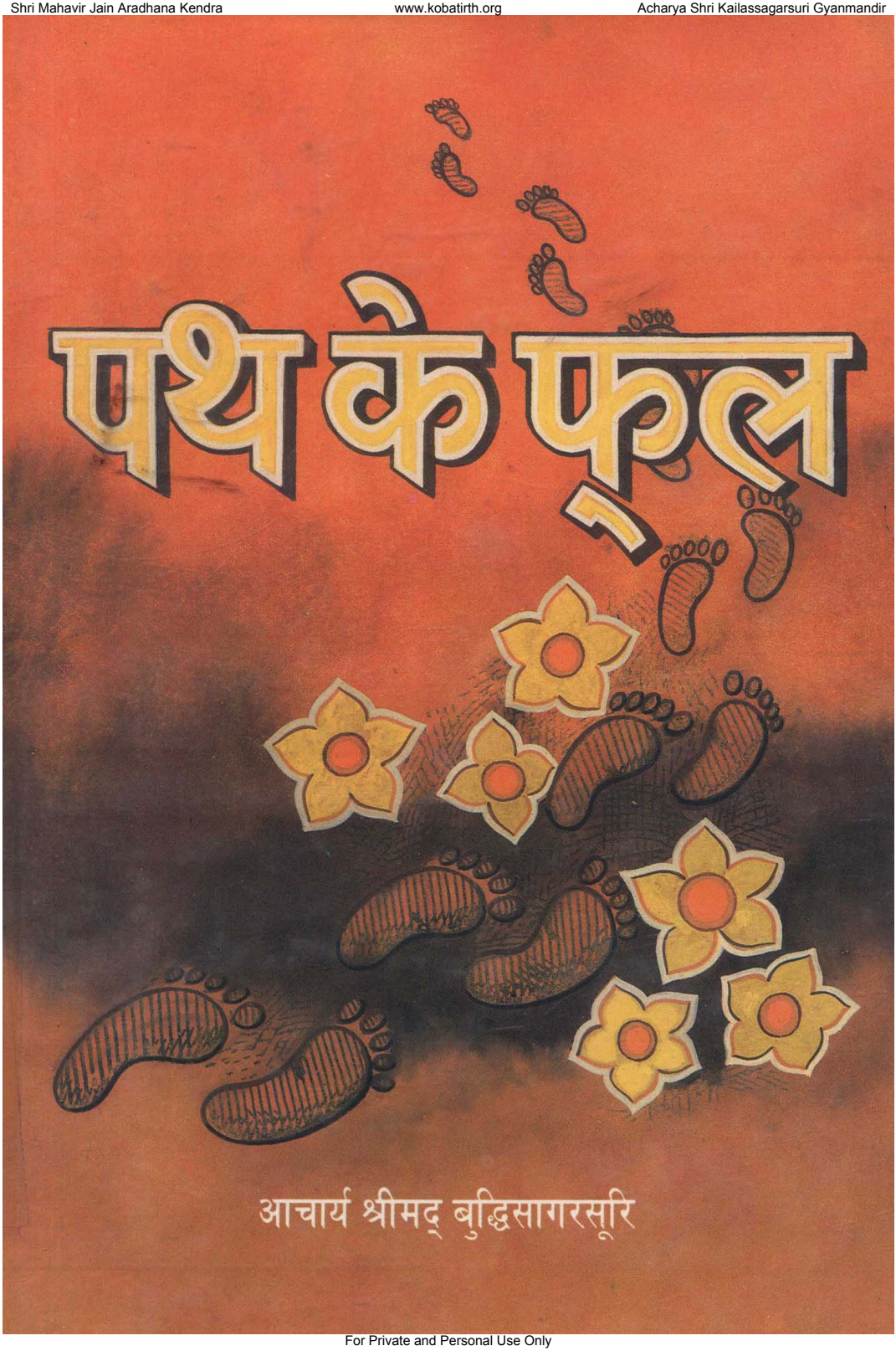

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पथ के फूल

स्व.
श्रीमद्
बुद्धिसागरसूरीशश्वरजी
महाराज की डायरी के
कातिपय सुवर्णपृष्ठ

: **आशीर्वाद** :
शासन प्रभावक आचार्य देवेश श्रीमत्
पद्मसागर सूरीश्वरजी म.

: **प्रेरक** :
ज्योतिर्विद् मुनिराज श्री **अरुणोदयसागरजी** म.

:: **भाषांतरकार** ::
रंजन परमार, पूना

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

■ **पथ के फूल**

आचार्य श्रीमद् बुद्धिसागरसूरीश्वरजी म.

72368

■ **प्रकाशक/प्राप्तिस्थान**

श्री अरुणोदय फाउन्डेशन

कोबा, जिला गांधीनगर

गुजरात, ३८२ ००९

Serving Jinshasan

072368

gyanmandir@kobatirth.org

■ सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

■ हिन्दी प्रथम – आवृत्ति, वि.सं. २०५०, मार्गशीर्ष कृष्णा त्रयोदशी

दिनांक ११–१२–१९९३

■ प्रतिया : १५००

■ **मूल्य : २५/– रूपये**

■ **टाईप–सेटिंग :–**

एक्कोर्ड कम्प्यूटर्स, अहमदाबाद.

■ **मुद्रक :–**

पार्श्व कंप्यूटर्स, अहमदाबाद

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रकाशकीय

अष्टोत्तर–शत–ग्रन्थ प्रणेता योगनिष्ठ आचार्य देवेश श्रीमद् बुद्धिसागरसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा आलेखित महाकाय ग्रन्थ 'कर्मयोग' का हिन्दी संस्करण प्रकाशित करने के पश्चात् आचार्य श्री के ही चिंतन–संग्रह–रूप में प्रकाशित 'पाथेय' (गुजराती पुस्तक) का हिन्दी संस्करण पथ के फूल शीर्षकतहत पुस्तक प्रकाशित करते हुए हमें परम प्रसन्नता हो रही हैं ।

आचार्य श्रीने सिर्फ २५ वर्ष के संयमी जीवन में १०८ से भी अधिक ग्रंथो का निर्माण कर एक कर्मठ कर्मयोगी का परिचय दिया है ।

आचार्यश्री का कर्म–क्षेत्र प्रायः गुजरात एव बम्बई रहने से आप द्वारा निर्मित ग्रंथों की भाषाभी संस्कृत एवं गुजगती ही रही है। श्री अरुणोद फाउन्डेशन इस दिशा में गतिशील है, कि आचार्य श्री के साहित्यका प्रकाशन हिन्दी भाषा में हों ।

श्री अरुणोदय फाउन्डेशन के, आत्मकल्याणकर, सात्विक्ता–पोषक सुंदर पुस्तक प्रकाशनो के ध्येय को साकारता प्रदान की हैं, पूज्य वात्सल्यवारीधि, प्रखर वक्ता आचार्य श्रीमत् पद्मसागरसूरीश्वरजी म.सा. के मंगल आशीर्वाद एवं ज्योतिर्विद्र् गणविर्य श्री अरुणोदयसागरजी म.सा.की सत्प्रेरणाने प्रस्तुत 'पथ के फूल' पुस्तक–प्रकाशन का संपूर्ण लाभ लेने में भाग्यशाळी बने है– 'के.पी. संघवी रीलीजियस ट्रस्ट' के श्रीमान् बाबुलालजी संघवी एवं परिवार । तदर्थ वे धन्यवाद के पात्र हैं । हम आशान्वित हे कि भविष्य में भी इसी प्रकार हमारी संस्था को सहयोग देते हुए सम्यग्–ज्ञान के प्रचार–प्रसार में सहभागी बनेंगें ।

प्रसिद्ध भाषांतरकार श्री रंजनजी परमार भी धन्यवाद के पात्र है, जिन्होंने अल्पावधि में हिन्दी भाषांतर हमे प्रेषित किया है ।

श्री जवाहरचंद्रजी पटनी (P.H.D.) के भी हम विशेष आभारी है । आपने प्रतिफूल स्वास्थ्य में भी संपूर्ण भाषांतर को परिमार्जित किया है

श्री अरविन्दभाई पटेल, एकोर्ड कंप्यूटर के श्री बिनीतभाई एवं पार्श्व कम्पयटर्स के श्री अजयभाई का सहयोगभी सराहनीय रहा, जिन्होंने संपूर्ण पुस्तक को बेहतरीन रूपसे सज्जा–संजोकर हमारा उत्साह बढाया.

अंत में, जिनाज्ञासापेक्ष ईआचार्य श्रीमद् बुद्धिसागर सूरीश्वरजी म.सा. के आशय विरुद्ध कुछ भी क्षति/त्रटी रह गई हो तो त्रिविधे–त्रिविधे मिच्छामि दुक्कडम्।

श्री अरुणोदय फाउन्डेशन
कोबा

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सुदुर्लभ मनुष्य भव प्राप्त करके श्री जिनेश्वर परमात्मा की भक्ति, सम्यग् ज्ञान की भक्ति में पुण्योदय से प्राप्त शक्तियां का सदुपयोग करते हुए, मनुष्य–भवकी सार्थकता सिद्ध करना हमारा परम लक्ष्य होना चाहिए.

अनंत दुःखों से भरे हमारे इस संसार का अंत हो इसी आशय–युक्त धर्म कार्यो में सदा तत्परता पूर्वक प्रयत्नशील रहना चाहिए ।

''पुष्यशाली माता पिता की संताने भी पुण्यशालीही होती हैं, इस उक्ति को चरितार्थ करते हुएँ, एसे ही पुण्यशाली श्री हंजारीमलजी एवं श्री बाबुलालजी पर माता श्री कनीबाई एवं पिता श्री पूनमचंदजी के धार्मिक संस्कारो का जो प्रभाव पडा उसीके अनुरूप आप तथा आपका परिवार धर्मकार्यो के प्रति समर्पित है।

माता पिता के उपकारों की स्मृति सदैव अमर रहे, इसीलिए आपने के.पी. संघवी रिलीजिस ट्रस्ट एवं के.पी. संघवी चेरीटेबल ट्रस्टकी स्थापना की हैं ।इन ट्रस्टों के जरिए आत्मकल्याण के अनेकविध सुकृत कार्य करने का बीडा उठाया हैं, वे उन कार्यो में रत रहते हैं– जो अपने कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हैं.

आपका परिवार भी आपके साथ ही धार्मिक तथा सामाजिक कार्यो में आपको साथ में जुटा हुआ हैं और निरंतर उनमें सहभागी बन रहा हैं ।आपके परिवार के सदस्योने जो तपस्या का ढाढ जमाया हैं वेह हम सभी के लिए अनुमोदनीय एवं अनुकरणीय हैं, ''फाउन्डेशन'' के हम सभी सदस्य, पदाधिकारी, एवं सभी शुभ चिंतक, आपके पारिवारीक सदस्यों के प्रति शुभ कामनाऐ अर्पित करते हैं।

- श्रीमान् हंजारीमलजी के सुपुत्र श्री दिलीपकुमारजीने छोटीसी उम्र में अट्ठाई की महान करके हमें भी तप करने की सुन्दर प्रेरणा दी हैं ।
- श्रीमान् हंजारीमलकी धर्मपत्नी अं.सौ. श्री शांताबहनने सिद्धितप, १६ उपवास, १० उपवास, मोक्षदंड तप आदि विविध तपश्चर्या करके आपके परिवार में तपका रवासा माहौल बना दिया।
- वि.स. २०४९ में (गतवर्ष) श्रीमान् बाबुलालजीकी धर्म–पत्नी अं.सौ. श्री रतनबाईने मासक्षमण तपकी उग्र तपश्चर्या शासनदेवकी कृपासे निर्विध्न पूर्ण की और उनके बर्षातप की आराधना भी चल रही हैं.
- गतवर्ष (वि.स. २०४९) श्रीमान् हंजारीमलजी के सुपुत्र श्री किशोरकुमारजी एवं उनकी धर्मपत्नी श्री सुधाबहनने और इनके सुपुत्र श्री जिमितकुमार और सुपुत्री रुपलबहनने एक साथ में अट्ठाई की तपश्चर्या करके आपके पूर्वजों का अपूर्व गौरव बढाया।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

के.पी. संघवी रीलीजीयस ट्रस्ट एवं चेरीटेबल ट्रस्ट द्वारा कृत सुकृत कार्य...

सुकृत	स्थल
■ आयंबिल भवन	मालगाम–राज.
■ परमात्मा का चांदी का रथ	
■ उपाश्रय–पौषधशाला–दो	
परमात्मा का चांदी का रथ	कैलाशनगर–सूरत
■ पौषधशाला–उपाश्रय– दो	
■ राणकपुर तीर्थ में मुखय द्वार	राणकपुर राज.
■ श्री जीरावलाजी तीर्थ में	
पोष दशमी पर तपस्वीयों	
का अत्तरवायळा	जीरावलाजी राज.
■ वरमाण तीर्थ में उपाश्रय	वरमाळ राज.
■ श्री सीमंधरस्वामि का जिनालय	
■ शीत वारिगृह (परब)	
■ रोग निदान केन्द्र अंबिका निकेतन	सुरत
■ महिला उद्योग केन्द्र	सुरत
■ शत्रुजय तीर्थ निर्माण में मुख्य दाता	कलिकुंड–घोलका
कालिकुंड तीर्थ मुख्य द्वार	
■ कलिकुंड तीर्थ के मंदिर में पट	धोलका
■ हस्तगिरि तीर्थ में भक्ति–गृह	हस्तगिरि
पालीताणा तीर्थ में भक्तिगृह	पालीताणा
■ पालीताणा तलेटीरोड वृक्षारोपण	
■ पालीताणा गिरिराज पर वृक्षारोपण (चालू)	
■ दो बार शाश्वती ओली की आराधना	केलासनगर–सुरत
■ आयंबिलशाला के मुखय दाता	
■ समग्र तपस्वीयों का पारणा	सुरत
■ चैत्र की शाश्वती ओली	कलिकुंडतीर्थ–धोलका
■ श्री ऋषभकंठाभरण तप के तपस्वीयो	
की भक्ति	कैलासनगर सुरत
■ चांदी के चौदह स्वप्न, परणा	
■ चांदी के चौदह स्वप्न, पारणा	किसी भी गांव में आवश्यक्ता होतो लाभ लेते है ।
■ परमात्मा की चांदी की आंगी	
एवं चौदह स्वप्न	सैफी सोसायटी सूरत.

For Private and Personal Use Only

- महावीर परमात्मा के सत्ताईस भवों की कलात्मक संरचना — कोबा
- आदिनाथ प्रभुना सोने का मुकुट — कैलासनगर सुरत
- परम शासन प्रभावक आचार्य प्रवर श्रीमत् पद्मसागरसूरीश्वरजी म.सा. की शुभ निश्रा में श्री जीरावलाजी तीर्थकी छत्र–छाया में त्रि–दिवसीय भव्य शिवर के आयोजन के साथ इस पथ के फूल पुस्तक का श्रेष्ठिवर्य श्रेएिकभाई–कस्तुर भाई के कर कमलों से विमोचन संपन्न करवाने की भावना।

इस प्रकार आप द्वारा किए गए जिनाज्ञा–अनुरुप सुकृत कार्यों की हम हृदय से अनुमोदना करते हैं. एवं भविष्य में भी आप के द्वारा शासन प्रभावना के कार्य निरंतर होते रहे इसी आकांक्षा के साथ....

ट्रस्टी मंडल
श्री अरुणोदय फाउन्डेशन
कोबा

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भूमिका

वात्सल्य के महासागर, आचार्य पुङ्गव श्रीमत् पद्मसागरसूरिजी म.सा. ने मुझे ज्ञान–वारिधि, कर्मयोगीश्वर आचार्यदेवेश श्रीमद् बुद्धिसागरसूरीश्वरजी म.सा. की पुस्तक ''पथ के फूल'' की भूमिका लिखने का स्नेहसिक्त आदेश दिया, उसे परम विनय–भक्ति पूर्वक शिरोधार्य करके कुछ अटपटे शब्द लिखने की बालचेष्टा कर रहा हूँ।

परमकृपालु आचार्यप्रवर श्रीमद् पद्मसागरसूरिजी म.सा. ने ज्ञान–वाचस्पति योगनिष्ठ आचार्य श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी म.सा. के बृहद ग्रंथ ''कर्मयोग'' की भूमिका लिखने का कुसुमभार मुझे सोंपा था। कर्मयोग गूजराती भाषा में ८०० पृष्टों का विशाल ग्रंथ हैं, जिसका संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तर श्री अरुणोदय फाउन्डेशन–कोबा द्वारा ही बहुत ही सुन्दर रूप से प्रकाशन किया गया हैं, जो अतिशय लोकप्रिय हुआ हैं।

प्रस्तुत–पुस्तक/किताब कर्मयोगी श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी म.सा. द्वारा आलेखित विविध पत्रों का संग्रह हैं जिनमें सर्वजनहिताय भावना पुष्पित हैं। जैनदर्शन को इतनी सूक्ष्मता और सरलता से रूपायित करने की अद्‌भूत कला के दर्शन इस पुस्तक में होते हैं।

साहित्य की दो विधाएँ सर्वत्र मान्य हैं–गद्य और पद्य। गद्य में कहानी, उपन्यास, निबन्ध, डायरी, आत्मकथा, जीवन कथा, रिर्पोताज्रादि अनेकानेक शैलियाँ हैं। पद्य में महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्यादि भिन्न–भिन्न विधाएँ हैं।

परन्तु पत्र–लेखन शैली अपनी विशेषता के कारण विशेष लोकप्रिय हैं। पत्रों में आत्मीयता का अधिक्य होता हैं, इसलिए यह पाठकों के हृदय को छू लेता हैं।

श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी की पत्रशैली अनूँठी हैं, अनूँठी इसलिए हैं कि– उपदेशों को साहित्य की चासनी में पगाकर ''इमरती'' मिठाई की तरह रसात्मक बना दिया हैं, कोरे उपदेश शुष्क होते हैं, परन्तु उन्हें साहित्य–रस में डुबोकर जब प्रस्तुत किया जाता हैं, तब उनकी लोकप्रियता बढ़ जाती हैं।

वस्तुतः मनुष्यभव का एक परम पुनीत उद्‌देश्य हैं, वह हैं– अपनी देह में रही हुई अशुद्ध आत्मा को शुद्ध बनानी और यह तभी संभव हैं कि जब हम सुच्चरित्र बनें, अपने जीवन में मैत्री, प्रमोदादि भावना के फूल खिलाएँ तथा अपने कार्य कलापों, आचार–व्यवहार से जगत का प्रांगण सुख–शान्ति की सौरभ से भर दें।

साहित्य की स्वर्णमुद्रिका में ये पत्र बहुमूल्य नगीने की तरह जड़े हुए हैं। जब पाठक किताब को कर–कमलों में लेंगें और पत्र–वांचन का शुभारम्भ करेंगे, तब

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वे आद्यान्त पढ़े बिना नहीं रहेंगे, क्योंकि –इनमें किसी शिक्षाप्रद रसमय उपन्यास सी रोचकता हैं, रोचकता के साथ जीवन को सद्गुणों की सुरभि से भरकर, सुशोभित करने की अनुपम क्षमता भी हैं। जैसे कोई श्रान्त, कलान्त पथिक पुष्पवाटिका में पहुँचकर सुगन्धित जल–वायु की लहरों से प्रफुल्लित और स्वस्थ हो उठता हैं, वैसे ही ये पत्र–पाठक के भव–श्रम को हरेंगे, इससे वह अन्तर्मुखी होकर मन्दिर में बिराजमान करूणासागर वीतराग परमात्मा के दर्शन अपने मन मन्दिर में कर पाने में समर्थ बन पायेगा।

भोगवादी युग की विभीषिका के जाल में छटपटाते लोगों को अध्यात्म का अमृत पिलाने वाले ये पत्र आत्मिक उर्जा को विकसित करने में पूर्णतया सक्षम हैं। इससे चेतना की संवेदना के अनेक पुष्प–आस्तिकता, वैराग्य, विवेक, मैत्री, दया अहिंसा, सदाचार सहृदयता, पापों से भय, प्रस्फुटित होकर जीवन जगत् को सुख–शान्तिमय बना देंगे।

कर्मठ कर्मयोगी आचार्य भगवंत की पत्र–लेखन शैली की उपमा वसंत ऋतु में खिली पुष्पवाटिका से देना उपयुक्त रहेगा क्योंकि– पत्र वांचन करते वक्त पुष्प–वाटिका में विहार सा आनन्द प्राप्त होता हैं। कतिपय पत्रों का उल्लेख ''भूमिका'' में करके मैं पत्र शैली की रोचकता का परिचय सहृदयी पाठकवृन्द को कराना चाहता हूँ। क्योंकि–वैसे तो सभी पत्र मंत्र–मुग्ध करनेवाली सुगन्ध के समान चित को प्रसन्न करते हैं मगर इस नन्हीं सी भूमिका में कतिपय पत्रों की रसवाहिता, आत्मरमणता, रसिकता, प्रभावसलिलसरितादी गुणों का जिक्र कर देना चाहता हूँ।

शुभ संस्कार, सत्संगति, पारसमणि, पर उपदेशकुशल बहुतेरे, दीप जलाओ मन मन्दिर में, शान्तसुधारस, अनेकान्तदृष्टि, शुभ विचार, गंगाजल, शुभ कर्म–विकास का स्वर्ण सोपान, शुद्ध स्वभाव, सर्वोत्तम जगत् सेवा, प्रेमाभक्ति, मौन की महिमा, विशालदृष्टि, दयालु–मातातुल्य–गीतार्थ गुरुवर विश्व एक बगीचा, परनिन्दा, विषवेलड़ी आदि, ईत्यादि, पत्रों में पुष्प–सौरभ बिखेरती ये पंक्तियाँ किसे प्रफुल्लित, प्रस्फुटित नहीं करती।

सुक्ति शैली–

१. ''वस्तुतः तलवार की धार पर चलना सरल हैं, किन्तु गुरु भक्ति करना दुष्कर हैं।''

२. ''दान से परस्पर एक–दूसरे का उपकार होता हैं।''

३. ''दान से तीर्थंकर पद की प्राप्ति भी होती हैं।''

४. ''दान धर्म मुक्ति का सोपान हैं।''

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

५. "दुर्गुणों के नाश करने हेतु सद्गुणों का बार–बार चिन्तन–मनन–स्मरण–ध्यान करना चाहिएँ।"

६. ज्ञानीजनों की अन्तिम खोज आत्मा का सहजानंद हैं।

–रस मीमांसा–

रस मीमांसा के समस्त पत्र जैनदर्शन की सूक्ष्मता से परिपूर्ण हैं, परन्तु उनमें दर्शन का गाम्भीर्य साहित्य–रस में पककर मधुर बन गया हैं–जैसे–

१. "मन–वचन एवं काया के योग के बिना आत्म विकास की साधना नहीं हो सकती।"

"–त्रिवेणी"

२. "उद्यान में पुष्पित विभिन्न पुष्पों की भाँति मनुष्यभवोद्यान भी अनेक विचारों की महक से वातावरण को भर देता है।"

"–विश्व एक बगीचा"

३. "क्रोध व ईर्ष्यादि दुर्गुण–धारक लेखक अपने पत्र–पत्रिकादि में बारूद भर–कर वाचक वर्ग के हृदय में क्रोधादि दुर्गुणों की अधिकाधिक उत्पत्ति होवे– ऐसे लेख–लिखकर भाव–कसाई की पदवी का सरेआम अनुसरण करते हैं।"

"– प्लेग के जन्तु"

–गागर में सागर–

१. "सद्गुण–विहीन विद्वान व्यक्ति ज्वालामुखी की तरह होता हैं।"

–दयालु–मातातुल्य–गीतार्थ गुरु

२. "निष्काम भाव से धार्मिक कार्यो को अंजाम देनेवाले महात्मा–गण कभी दुःखी नहीं होते और ना ही शुभ–कार्यो से दूर रहते हैं।"

"– निष्काम भाव से शुभ कर्म करे"

३. "दुर्जन–मनुष्यों की संगति से मानसिक संताप होता है।"

"सत्संगती–पारसमणि"

अलङ्कारिता

"गुरुदेव के पत्रों में अलंकार की सुषमा मन को मोहित करती हैं। ये अलंकार पाठकवृन्द को सरलता से समझने में सहायक हैं:– जैसे कि– अनीति से प्राप्त प्रभुत्व भी प्रायः पूर्णिमा के चन्द्र की भाँति सदाकाल/सदैव टिक नही सकता"

"–जीवन–पुष्प की सुगंध–नैतिकता"

"आचार का स्वरूप एक तरह से नदी के आकार जैसा हैं, और विचार का स्वरुप मेघ के जल जैसा हैं।"

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

–'जीवन रथ के दो पहिए आचार और व्यवहार'

इस प्रकार के पत्रों के जरिए–पूज्य आचार्य श्रीने जीवन को नीति–न्याय से विभूषित करने के नुस्खे बताएँ हैं और जैन दर्शनानुसार जीने की कला भी सिखाई हैं।

यदि हम इन पत्र–पुष्पों, के पुष्पहार अपने कंठ में धारण कर ले, तो निश्चय ही हम मुक्ति–मंदिर के स्वर्ण सोपान चढ़ सकते हैं। ये पत्र शाश्वत सुख की सौरभ से भरे पड़े हैं। ये पत्र दुर्लभ मणि–मुक्ता हैं। इनका चिन्तन मनन रुप दो भाई कल्याण के असंख्य द्वारा खोलने में सक्षम हैं। ये पत्र, ज्ञानी गुरुदेव के हृदय/हिमगिरी सेनिकली गंगोत्री की तरह प्रवाहित निर्मल जलधारा के समान होने से, मानव–मन में असंख्य शुभ भाव एवं शुभ अध्यवसाय की तरंगे आलोकित करेंगे। ये पत्र बाह्य जगत् के भोगवाद, –जड़वाद एवं क्षण भंगुरता रूप सुख के दलदल से निकाल कर हमें शाश्वत सुख के कुसुम–वन में ले जाने वाले अनमोल रत्न हैं।

अन्त में, आचार्य श्री की लेखन–शैली के विषय में मैं केवल इतना ही कहूँगा कि– ''हाथ कंगन को आईने की क्या आवश्यकता हैं ?'' मुझे आचार्य भगवंत श्री पद्मसागरसूरिजी ने भूमिका लिखने का आदेश दिया, तब मैंने ''पथ के फुल'' को आद्यान्त पढ़ा, इनका चिन्तन–मनन करने पर मुझे अतिशय आनन्दाभूति हुई, मेरा चित्त–प्रसन्न हुआ, पत्र–पुष्पों के प्रभाव से रोम–रोम पुलकित हुएँ, वीतराग प्रभु की भक्ति के मधुर संगीत से रोम–रोम अनुगुंजित हो उठे।

–: दो शब्द अनुवादक के लिए भी :–

श्री रंजन परमारजी ने गूजराती पत्रोंका सरल व सुबोध हिन्दी में अनुवाद किया हैं, वह सराहनीय हैं। वे मेरे ही शिष्य–रत्न हैं और दक्षिण भारत में हिन्दी साहित्यकार के रुप में विख्यात हैं। मेरे आशिष व शुभभाव उनके साथ सदैव है कि– वे सत्साहित्य सृजन में सदा जागृत हैं।

मेरा सूचन

श्री अरुणोदय फाउन्डेशन कोबा से नम्र अनुरोध हैं कि– योगनिष्ट आचार्य गुरुदेव श्रीमद् बुद्धिसागरसूरीश्वरजी म.सा. के समग्र अध्यात्मसाहित्यों कों सजाध जा कर हिन्दी में प्रकाशित करें, जिससे मानव कल्याण का राह प्रशस्तव सरल बनें।

श्री मद् जी के कर्मयोग की भूमिका में लोकमान्य तिलक जैसे विद्वान को लिखना पड़ा कि– यदि आचार्य श्री का ''कर्मयोग'' पढ़ लेता तो में अपना गीता रहस्य ग्रंथ कभी नहीं लिखता। ऐसा असाधारण ग्रंथ ''कर्मयोग'' के लेखक–कर्मयोगी–श्रीमद् बुद्धिसागरसूरीश्वरजी म.सा. ''अलंकारः भुवः'' अर्थात् विश्व के अलंकार थे। उनके

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

समग्र साहित्यो को हिन्दी जगत् के लिए अनुदित करवाकर, प्रकाशित कियाजावें तो अतीव प्रशंसनीय कार्य होगा।

मेरी भूमिका को गुरु–प्रसाद रुप में प्रबुद्ध प्राज्ञ पाठकजन ग्रहण करें, यही मेरी प्रार्थना हैं– क्योंकि– मैंने केवल जल–संपुट में चन्द्र बिम्ब को पकड़ने की बाल–चेष्टा की हैं।

श्री महावीरप्रभु जन्म वांचनदिन
वि.स. २०५० द्वितीय भाद्रपद०।।

डॉ. श्री जवाहर चन्द्र पटनी
(M.A. हिन्दी–अंग्रेजी, P.H.D.)
पताः– C/o डॉ. अमृत जे. पटनी
कुशल क्लिनिक
भीनमाल

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

किंचित् प्रास्ताविकम् .....

डायरी साहित्यका एक अनूठा प्रकार है । भारत में यह विद्या अभी फूली–फली नहीं हैं । मूल तो यह पश्चिमकी उपज हैं ।

डायरी अर्थात् गुजरनेवाले दिन एवं रात्रि के दौरान मानव द्वारा अनुभव की गयी, चिंतन–मनन किये गये विविध विषय तथा उससे सम्बंधित संस्मरणोंका रोजनामचा।

डायरी लेखक में रहे साहसका प्रतीक है । सच्चाईका यह एक करार है । निखालिसता के बिना डायरी नहीं लिखी जाती । वस्तुतः हिम्मत, सच्चाई व निखालिसता बिना आलेखित डायरी, डायरी नहीं लगती, बल्कि उसके बिना की डायरी आत्म–प्रशंसा को एक तरह से मटई बन कर रह जाती है ।

इतिहास में इस प्रकार की संपूर्ण डायरी टोल्सटोय की देखने में आती है । गुजरात में ऐसी डायरी सरस्वतीचंद्र के सर्जक श्री गोवर्जनराम त्रिपाठी, एक जमाने के कटु आलोचक.... विवेचक श्री नरसिंहराव भोलानाथ दिवेटिया एवं श्री जवेरचंद मेघाणीने आलेखित की हैं।

वास्तव में डायरी किसी लेखक की निरी नग्न छवि है । एक प्रकार से इसकी गणना लेखक के जीवन चरित्र की निगेटिव के रूप में कर सकते है । लेखक के जीवन को पूर्णतया समजने का डायरी एक महत्त्वपूर्ण साधन है ।

डायरी में लेखक अपने अनुभवों का लिपिबद्ध करता है। अपने परिचित का डायरी के माध्यम से वह परिचय देता है । किस प्रसंग पर उसे कैसी अनुभूति हुयी, उसका वह वर्णन करता है । पाप व पुण्य के विचार में निजात्मा किस प्रकार गुजरा, उसका वह निर्भर हो कर वर्णन करता है और वर्तमानकालीन त्रुटियों की नोंद लेकर कल के लिए शुभ निर्णय लेता है । फलतः किसी भी डायरी में उसके लेखक की वास्तविक व स्पष्ट तस्वीर देखने को मिलती है ।

आज पर्यंत हुए किसी जैन साधु–संतने डायरी लेखन किया हो, एसा कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता । वरन जैन साहित्य के इतिहास में ऐसी डायरी लिखनेवाले श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी एकमेव जैन साधु है ।

दीक्षा–ग्रहण करने के उपरांत आपश्रीने डायरी–लेखन का कार्य सतत जारी रखा था । लेकिन आपकी सभी डायरीयां प्रकाशित नहीं हो सकीं । उसमें से ईस्वी सन् १९११ से १९१४ पर्यंत लिखित डायरियाँ 'धार्मिक गद्य संग्रह' एवं 'पत्र सदुपदेश' के २२५ में प्रकाशित हो पायी हैं ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्रीमद्‌जी की उक्त डायरियों में सामान्यतः विविध विषयोंको अनुलक्षित कर उनके द्वारा किया गया चिंतन ही द्रष्टिगोचर होता है । उनके आंतरिक जीवन की घटनाओं का उल्लेख अल्प प्रमाण में दिखायी देता हैं और जहाँ कहीं उल्लेख मिलते हैं, वे नहीं के बराबर हैं ।

आपश्री दिनांक २३–१०–१९११ बम्बई में लिखते है :–

''मनुष्य को प्रतिबोधित करने हेतु नियमित रूप से व्याख्यान देता हूँ । लेकिन आचार–विचारों का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि व्याख्यान–श्रवण के उपरांत भी उन पर जैसा चाहिण वैसा प्रभाव नहीं पडा । इसका मुख्य कारण यह है कि व्याख्यान में उपस्थित जनता भेडचाल की गति से व्याख्यान श्रवण करती है....''

दिनांक २–१–१९१२ वापी में लिखते है :

''पंच महाव्रत सम्बंधित पाठों का मनन व अनुभव करने पर प्रतीतत होता है कि अभी भी पकखी सूत्र में कहे अनुसार उत्तरकरण चारित्र में परिपूर्णतः प्रवर्त नहीं सकते । हाँलाकि, पाक्षिक सूत्र के उल्लेखानुसार मैं बतबि करने के लिए प्रयत्नशील हो, उत्साहित हूँ....''

दिनांक १८–१–१९१२ बलसाड में लिखते है :–

''आज कल रात्रि के समय ध्यान–समाधि के अभ्यास–सेवन से सहज सुख का अनुभव बढता जा रहा है । लगातार भक्तो के आगमन तथा औपदेशकि प्रवृत्ति के कारण समाधि की गहराई में उतरने का जोरदार अभ्यास नहीं हो सकता । परमार्थिक कार्यों में प्रवृत्ति करने का कार्य अचानक आ जाता है । शुभ–प्रवृत्ति सर्वथा आदेश है । शुभ प्रवृत्ति स्वरुप धर्म–व्यवहार कार्यों के सेवन में अंतर की निर्लिप्ता रखने का प्रयास विशेष रुप से कर रहा हूँ । ध्यान–पीढिका दृढ करने का कार्य अभी चल रहा है । ध्यान करने से मन को विश्राम मिलता है । अतः सहज समाधि का अनुभव प्राप्त होता है ।''

दिनांक ३०–१–१९१२ सुरत में लिखते है :–

''आत्म – समाधि प्राप्त कर आत्मसुख प्राप्त करना ही मैं अपना प्रधान कर्त्तव्य मानता हूँ । अतः जतिना संभव है, कर के रहूँगा.... एक कदम भी पीछे नहीं हटूँगा ।''

दिनांक ११–४–१९१२ पादरा में लिखते है :–

''आत्मा में रमणता करने पर आनन्द–रस की झाँकी का अनुभव होता है । उस समय त्रिभुवन के बाह्य सुख भी तृण समान भासित होते हैं... आत्मा की अतल गहराई में डूबकी लगा कर स्थिर हुआ मन सचमुच अंतर के आनन्दोल्लास से जीवित रह सकता है । और उसका प्रतिबिंब बाहिर में दृष्टगित होने का आभास होता है ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिनांक २९–५–१९१२ नागोल में लिखते है :–

''तुम स्वयं क्या कर सकते हो, वह कर के दिखाओ । महज डिंगे हाँकने से अथवा पत्तों का महल बनाने से काम नहीं चलेगा । तुमने अपने जीवन में जो – जो कार्य करने का निर्धार किया है, उसको प्रतिलक्षित कर अपने कार्यों को कार्यान्वित करने के लिए मुस्तैदी से लग जाओ ।''

दिनांक १४–९–१९१२ अहमदाबाद में लिखते है :–

''आज से आत्मा के मंद वीर्य को उत्कृष्ट वीर्य में परविर्तन करने हेतु प्रयत्नशील हूँ । मैं परम वीर्यमय हूँ और स्व अधिकार से प्राप्त मेरे परमवीर्य को प्रकरित करने हेतु प्रयत्नशील हूँ.... लाथ ही मैं दृढ संकल्प करता हूँ कि, जनि संयोग व हेतुओं की सामग्री प्राप्त कर आत्मा का परिवर्तन परमात्मा में होता है, एसे संयोग व हेतुओं की सामग्री मुजे शीघ्रातिशीध्र प्राप्त हो.... !''

दिनांक १५–९–१९१२ अहमदाबाद में लिखते है :–

''अभी भी मैं भूल का पात्र हूँ । वैसे ही दूसरे जीव भी भूल के पात्र हैं । अतः अन्य जीवों पर यदि निज आत्मा की भाँति समान दृष्टि नहीं रखी हो और उन्हें हमेशा हिफारत भरी नजर से देखा हो तो हे वीतराग भगवान ! मेरी अक्षम्य भूल के लिए आप से क्षमा याचना करता हूँ ओर भविष्य में सभी प्राणियों के प्रति आत्म–दृष्टि वत व्यवहार करने का दृढ संकल्प करता हूँ....!''

श्रीमद्जी ने अपनी डायरी के कुछ पृष्ठों पर काव्य–पंक्तियाँ भी अंकित की हैं। आत्मा में अथाव प्रमे में सराबोर हो, दिनांक २२–९–१९१२ अहमदाबाद में आपने लिखा है :–

''ज्यां ज्यां विभूति आपनी त्यां प्राण मारा पाथरुं, तव नाम पियुष पी जणुं आनन्द थी हसतो फरुं । मारुं हृदय सोंप्यु तने ए प्रेममां अर्पण सहुं । तारा विना साक्षी नथी तारा विना रहेवुं नथी, तारा विना वदवुं नथी तारा विना जोवुं नथी । मारुं अने तरुं अरे ए भेद पग भूली गयो, आजेय ने आजार तुं जिनराज तुं ध्याने रह्यो।''

एसी बिलकुल निजी एवं अपनी विविध प्रवृतियाँ, भावनाएँ, संकल्प व क्षमापना की टिप्पणियों के उपरांत कई स्थानों पर विहार आते प्राकृतिक दृश्यों का मनोरम वर्णन, पठित पुस्तक व ग्रन्थों का स्वयं पर पडे प्रभाव....असर, समाज के संनष्ठि सेवकों के देहांत की आलोचना के साथ–साथ उनके गुण प्रशंसा की यथायोग्य नोंध भी ली गयी है ।

लेकिन सर्वाजिक ध्यान खिंच लेती उनके द्वारा निरुपित समाज संम्बंधित हित चिंतन की विचारधारा जैनों की कम होती आबादी, जैनों की निष्प्रभ होती प्रतिभा व गौरव गाथा, जैनों में धुसपैठ कर गये पारस्परकि राग–द्वेष व कलह, जैन समाज

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

में पनपती आपसी ईष्या व शत्रुत्व की भावना और जैन मात्र को विजिगीष होता देख; स्थान स्थान पर उनके द्वारा व्यक्त मानसिक व्यथा के कण बिखरे पडे हैं। आवश्यकतानुसार कटु आलोचना व कठोर लेख भी अत्र–तत्र दृष्टिगोचर होते हैं । साथ ही प्रेरक प्रगति का राजमार्ग भी दिखाने का यथेष्ट प्रमाण में प्रयास किया गया है । साधु समाज के सम्बंध में भी लिखा है । उनके शिथिलाचार, अभ्यास की मंदता व कट्टरपन की कटु आलोचना करते हुए अपना आक्रोश व्यक्त किया है ।

और सिर्फ जैन समाज, जैन धर्म एवं जैन साधु के सम्बंध में ही नहीं लिखते, हुए अन्यान्य प्रकीर्ण विषयों पर संक्षप्ति में, कतिु सुंदर चिंतनात्मक आलेखन किया है । शिक्षा, विज्ञान, आरोग्य, ब्रह्मचर्य, विश्वशांति, गुरुकुल, पत्रकारित्व, लेखक एवं पुस्तकालयादि अनेकानेक विषयों से सम्बंधित अनका चिंतन.... विचार प्रस्तुत डायरियों में पढने को मिलता है ।

दैनंदिन नोंद के रुप में यह सब आलेखित किया गया हो, उसकी भाषा सहज सुगम व आकर्षक है । सरल भी है और सुंदर भी । कहीं क्लिष्टता के दर्शन नहीं होते । प्रसाद व प्रवाए अस्खलति रुप से प्रवाहित होता रहता है ।

साथ ही डायरी में आलेखित चिंतन इतना तो वैविध्यपूर्ण तथा विशाल भावना से सराबोर है कि जैनों के अतिरिक्त अन्य किसी भी जाति या संप्रदाय से सम्बंधित वाचक इन डायरियों का पढन करे तो उसे उसकी पसंदगी का योग्य इसमें अवश्य प्राप्त होगा ।

और उल अर्थात् पा..थे..य !

श्रीमद्जी द्वारा लिखित मूल ग्रंथ 'धार्मिक गद्य संग्रह' का पढन करनेवाले को यह ग्रंथ अवश्य नया प्रतीत होगा ।

किंतु ऐसा कुछ भी नहीं है । इसमें जो कुछ नयापन है, वह तो महज इसका शाब्दिक श्रृंगार है ।

मूल ग्रंथ 'धार्मिक गद्य संग्रह' एवं 'पाथेय' में जो परिवर्तन दृष्टगिोचर होता है, वह श्रीमद्जी के चिंतन को अधिकाधिक वाचनक्षम बनाने हेतु ही किया गया है ।

वस्तुत : प्रस्तुत ग्रंथ की देह व आत्मा, चिंतान एवम सर्जन श्रीमद्जी का अपना ही है । मैंने तो केवल उनके भाव–देह को सुशोभित करने का कार्य किया है ।

नि: स्संदेह श्रृंगार करने से प्रतिमा अधिकाधिक दर्शनीय, भावभरी व आत्मा को जागृत करनेवाली सिद्ध हो, यही मेरी तमन्ना है ।

– गुणवंत शाह

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

एक निवेदन

मातृभूमि कालन्द्री में आयोजित संघ की सामान्य सभा की व्यवस्तता के बीच अचानक मेरे मित्र व अन्नय सहयोगी श्री एच. एम. शाह, आदोनी के माध्यम से राष्ट्रसंत एवं जैन मनीषी परमादरणीय आचार्य प्रवर श्रीमद् पद्मसागरसूरीश्वरजी महाराज साहब एक पत्र मिला । आपश्री मीनमाल में चातुर्मासिक स्थिरवास कर रहे हैं। पत्र में आशीर्वाद के साथ ही समय निकालकर भीनमाल आने का संदेश था । अनायास ही मेरा मन पुलकित हो, उनके प्रति असीम भक्तिरस से सराबोर हो गया। आज से दो–तीन वर्ष पूर्व पूना में दर्शन वंदन का लाभ प्राप्त होने के पश्चात् यह प्रथम अवसर था आपश्री द्वारा संदेश पाने का ।

दो–तीन दिन पश्चात् गुरुदेव की सेवा में जब मैं उपस्थि हुआ तो आपश्रीने मुस्करते हुए आशीर्वाद प्रदान कर मृदुभाषा में कहा : अच्छा ही हुआ, तुम आ गये । विगत् दो–तीन दिन से तुम्हारी ही प्रतीक्षा हो रही है । पूना भी पत्र प्रेषित किया है ।

भावविभोर हो, दर्शन–वंदन कर मैं नतमस्तक एक ओर खडा हो गया । मेरा रोम–रोम गुरु दर्शन से प्रफ्फुलित हो गया । नयन बावरे बन, आपश्री के सौम्य मुख मंडल को एक टक निहारने में खो गये । तभी आपश्रीका बुलन्द आवाज कान पर पडा : जाओ । अरविंद सागरजी से मिल लो । उन्हें तुम से काम हैं ।

मैं आपश्री द्वारा बताये स्थान की ओर मुडा तो गुरु–शिष्य की जोडी मुनिराज अरूणोदयसागरजी व मुनिश्री अरविंदसागरजी को सामने खडा पाया । मैं उनके पास गया और दर्शन–वंदन कर आसनीय हुआ ।

अल्पावधि तक विचार–विनिमय के अनन्तर एक ग्रंथ मेरे हाथ में थमाते हुए पूज्य अरविंद सागरजीने कहा : अरूणोदय फाउन्डेशनने भविष्य में हिंदी में उत्कृष्ट जैन साहित्य प्रकाशन करने का निश्चय किया है और उसका श्री गणेश पूज्यपाद योगनिष्ट आचार्य भगवंत श्रीमद् बुद्धि सागरसूरिजी लिखित पाथेय के हिंदी अनुवाद से करने की भावना है । अतः आपको पाथेय के हिंदी अनुवाद की जिम्मेदारी वहन करनी होगी ।

श्रद्धेय मुनिश्रीका प्रस्ताव मेरे लिए सोने में सुहागे जैसा ही था । आज तक मैंने कई जैन ग्रंथों के अनुवाद, संकलन व संपादन किया है और भविष्य में करने का दृढ संकल्प है । वैसे इससे पूर्व श्रीमद् पद्मसागरसूरिजी महाराज के आदेश पर मैंने हे नवकार महान व मीनसेन चरित्र के हिंदी अनुवाद सम्पन्न किये हैं और यह तीसरा

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अवसर था, जब आपश्री के समुदाय द्वारा अनुवाद–कार्य के लिए मुझे योग्य समझ, अनुवाद–कार्यका दायित्व मुझे सौंप रहे थे और मैंने नतमस्तक हो, पूज्यवरों का आदेश तत्काल शिरोधार्य कर अपनी सम्मति प्रदान कर दी ।

विगत ८–१० वर्षों से मैं पूज्यपाद के समुदाय से जुडा हूआ हूँ और मेरी दृढ मान्यता है कि आचार्य श्री पद्मसागरसूरिजी महाराज जैन संस्कृति और साहित्य के दिग्गज रक्षक तथा कला क्षेत्र व अन्य विधाओं के मर्मज्ञ होने के उपरांत आपश्रीने भारत की एकता, साम्प्रदायिक सामंजस्य और विविध कार्यो के समन्वय को अपना कर मानव मात्र के कल्याण को जीवन संदेश बना कर उसे साकार करने हेतु निरंतर प्रयत्नशील है ।

वह अपने प्रवचनों में प्रायः कहते है : ''मैं सभी का हूँ और सभी मेरे हैं। प्राणी मात्र का कल्याण मेरी हार्दिक भावना हैं । मैं किसी वर्ग, वर्ण, समाज का जाति के लिए नहीं, अपितु सब के लिए हूँ । मैं इसाइयों का पादरी, मुस्लिमों का फकीर, हिंदुओं का सन्यासी और जैनियों का आचार्य हूँ ।''

वस्तुत : प्रस्तुत कार्य प्रदान कर पूज्यवर्गेने मेरे कार्य के प्रति अटूट आस्था व विश्वास दर्शाया है। आशा है ''पथ के फूल'' कृति उनके विश्वास को बरकरार रखने में सफल सिद्ध होगी और भविष्य में भी साहित्य–साधना के विविध अवसर प्रदान करेगी ।

३११, रविवार पेठ
पूना : ४९९००२

– रंजन परमार

For Private and Personal Use Only

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्व. पूनमचंद संघवी

स्व. कनीबेन संघवी

प्रस्तुत पुस्तक 'पथ के फूल' के प्रकाशन में

श्री के. पी. संघवी रिलिजियस ट्रस्ट

२० अल्पा एपार्टमेन्ट, लालदरवाजा, सुरत

द्वारा

स्व. पुनमचंद संघवी और
स्व. कनीबेन संघवी की स्मृतिमे
आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है।

तद्‌र्थ **श्री अरुणोदय फाउन्डेशन**
आपका अभार मानता है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१. अनुरोध

हे आत्मन्!
निरुपाधि अवस्था सुरक्षित रहे इस
तरह उपकार में प्रवृत होकर तुम
अपने में रहे शुद्ध गुणों की ध्यान–
धारणा करते हो। वैसे ही निरंतर
निरवद्य....शुचिर्मय क्रिया में
प्रवृत्तिशील बने रहो।
–श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

बम्बई

दिनांक : २९–१०–१९११

हे चेतन! तुम अनेक सत्पुरुष एवम् अनेकानेक पुरुषों के समागम...सहवास में आये हो, तुमने बहुत–कुछ देखा है, परखा है और अनुभव भी किया है। फलतः अब तो सार में सर्वोत्तम ऐसी निरुपाधि अवस्था के प्रदेश में मुक्त होकर संचार करते रहो।

धर्म–प्रवृत्ति की उपाधियों से सम्बन्धित कई योगसंयोग तो तुम स्वंय हो कर उत्पन्न करते हो। अलबत, उसमें भी उपदेश का ही प्रमुख उद्देश्य है फिर भी निरुपाधि अवस्था सुरक्षित रहे, इस तरह उपकार में प्रवृत्त हो, सदैव अपने में रहे शुद्ध गुणों की ध्यान–धारणा करते रहो। वैसे ही निरंतर निरवद्य..शुचिर्मय क्रिया में प्रवृत्तिशील बने रहो। उच्च और निर्मल अध्यवसायों के हेतुओं का अवलम्बन करते रहो।

साथ ही, 'उपकार का बदला अपकार' में मिलने पर भी सदैव प्रसन्न रहो और विविध प्रकार के आचार–विचार व वृत्ति के लोग अपने स्वभावानुसार कुछ भी बोलें या आचरण करें तो भी तुम तटस्थभाव से व्यवहार करते रहो।

मानता हूँ कि धर्म–प्रचार और प्रसार करने की तुम्हारी तीव्र लालसा...शुभेच्छा है। तथापि आवश्यक अनुकूल सामग्री के अभाव में संकल्पित कार्य सिद्ध नहीं हो सकता, ना ही कार्य–सिद्धि संभव है।

हाँलाकि जैन गुरुकुल के आचार–विचार उजागर करने के तुमने हर संभव प्रयत्न किये हैं। पर सब व्यर्थ! फिर भी तुमसे जो संभव है सो करो। लेकिन भूल कर भी उसके तत्कालिन परिणाम के विचार में खो कर अकर्मण्य मत बन जाना।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हे चेतन! धर्म–प्रवृत्ति मार्ग स्वरूप व्यवहारमार्ग में तुम निरुपाधि अवस्था में रह सको उसी के अनुरुप प्रायः प्रवृत्तिमय बने रहो और मन–मस्तिष्क में नित्य प्रति सहज समाधिस्थ भावना रखो। ठीक वैसे ही प्रयत्नों की पराकाष्ठा करने के उपरांत भी कर्म–संयोग से प्राप्त आधि, व्याधि और उपाधियाँ, जो तुम्हारा पीछा नहीं छोडें...नामशेष न हों, उन्हें शांतिपूर्वक सहन करने की मानसिक–शूरता धारण करो।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२. शुभ संस्कार

पारे को सुवर्ण में तब्दील करना
जितना कठीन कार्य है। ठीक उतना ही
एक बार पडे अशुभ संस्कारों को
शुभ संस्कारों में परिवर्तित करना
जटिल कार्य है।
—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

भाईदर
दिनांक : १८—१२—१९११

आत्मा में रही शक्तियों को विकस्वर करने के लिए उत्तमोत्तम पुरुषों की संगति...सम्पर्क की आवश्यकता है। शैशवास्था में सुसंस्कृत व अच्छे आचार—विचारवाले लोगों के सहवास में रहना चाहिए। उसी तरह वैचारिक—शक्ति को संपुष्ट करने हेतु ज्ञानी महापुरुषों के सतत संपर्क में रहना परमावश्यक है। जिस तरह कुएँ अथवा सरोवर में गिरे मनुष्य पर कितना भी पानी आ जाय तो भी उसे पानी का बोझ कतई अनुभव नहीं होता, लेकिन यदि मनुष्य के सिर पर पानी से भरा एक घड़ा भी रख दिया जाय तो फोरन उसे उसका बोझ महसूस होता है। ठीक उसी तरह मनुष्य यदि अहंभाव का परित्याग कर कार्य करे तो उसे उसका बोझ नहीं लगता। किंतु अहंभाव...दुराग्रह से युक्त हो, कार्य करता है तो उसका उसे प्रक्षोभ...दुःख होता है।

आचार—विचार सम्बन्धित अशुभ संस्कार हृदय में एक बार कुंडली मार कर अड्डा जमा गये हों तो बाद में यदि उन पर शुभ आचार—विचारों का संस्कारोपण करने के प्रयास नहीं किये जाय तो निःसंदेह अशुभ आचार—विचार में किसी प्रकार का कतई परिवर्तन संभव नहीं है। जिस तरह पारे को सुवर्ण में परिवर्तित करना अत्यंत कठीन कार्य है, उसी तरह एक बार पड़े हुए अशुभ संस्कारों को शुभ संस्कारों में परिवर्तित करना अत्यधिक जटिल कार्य है।

शैशवास्था से ही हृदय में अमुक प्रकार के शुभ आचार—विचार दृढ हो जाने के कारण वर्तमान में ऐसी सुंदर अवस्था अमुक गुणों की वजह से प्राप्त हुई है। हृदय

For Private and Personal Use Only

में श्रेष्ट व उत्तमोत्तम गुणों के संस्कार अधिकाधिक मात्र में वृद्धिगत करने का कार्य क्रमशः बढाने की पुनरावृत्ति करने की आवश्यकता को स्वीकार करता हूँ। विगत् भव–भवान्तर से हृदय में जो–जो दुर्गुण अड्डा जमाये हुए हैं, उन्हें नेस्त–नाबूद...नष्ट करने का संकल्प करता हूँ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

३. शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्

शारीरिक बल विकसित कर उसकी हिफाज़त करना और उसका धार्मिक कार्यों में उपयोग करना ही उत्तम मनुष्य का आद्य कर्तव्य है।
—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

सोपाला
दिनांक : २१–१२–१९११

शरीर को हद से बाहर अधिकाधिक कार्यों में लगाये रखने के परिणाम भयंकर व हानिप्रद होते हैं। शारीरिक आरोग्य से धर्म की आराधना की जा सकती है। साथ ही इससे मनोयोग की सानुकूलता भी बनी रहती है। अतः शारीरिक शक्ति का क्षय न हो, इस तरह उसका उपयोग कर प्रायः प्रवृत्तियाँ करनी चाहिए।

दृढ एवम् निरोगी शरीर के अभाव में मानव ध्यान...समाधि में लीन–तल्लीन होने में असमर्थ होता है। परिणामतः शरीर–बल संचय कर उसकी हिफाज़त करना व धार्मिक कार्यों में उसका उपयोग करना ही उत्तम मनुष्य का परम कर्तव्य है।

शरीर के वीर्य की सुरक्षा...देखभाल रखने से शारीरिक दृढता कायम रहती है और वीर्य–रक्षा रूपी ब्रह्मचर्य–व्रत से आंतरिक ब्रह्मचर्य की साधना करने में अधिकाधिक सहायता मिलती है।

स्वस्थ शरीर हमेशा के लिए निरोगी बना रहे, अतः शारीरिक–शास्त्र का ज्ञान–संपादन कर प्रायः यथाशक्ति अपना आरोग्य कायम रहे ऐसे उपाय करने चाहिए। क्योंकि शारीरिक योग से ही मानसिक योग की रक्षा...सुरक्षा संभव है। शारीरिक, वाचिक एवम् मानसिक योगों में से कोई भी योग अपने कार्य के लिए उत्तम होता है।

ऋषभनारायण संघयण के बिना केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। शास्त्रों में उल्लेखित वचनों से ज्ञानीजनों को पर्याप्त मात्रा में अनुभव प्राप्त होता है। फलतः उससे उन्हें शारीरिक बल विकसित करने का रहस्य ज्ञात होता है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

व्यक्ति की मानसिक शक्तियाँ भी बिना शारीरिक स्वास्थ्य एवम् बल के धार्मिक प्रवृत्तियाँ करने में शक्तिमान नहीं होतीं। अतः बीस वर्ष तक ब्रह्मचर्याश्रम में रह कर बालक शारीरिक बल विकसित कर सकें ऐसी सुविधाएँ जुटानी चाहिए।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

४. जीवन रथ के दो जीवन रथ के दो पहिए– आचार और व्यवहार

आचार और व्यवहार जीवन रथ के दो पहिए हैं, अतः आचारों को व्यवहार में लाने से जीवन विकासोन्मुख होता है। दोनों के सुसंयोग से शिवगति (मोक्षपद) प्राप्त होती है।

–श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

पालघर
दिनांक : २२–१२–१९११

विचार बल के बिना आचार–व्यवहार में सरसिकता का अनुभव नहीं कर सकते।

आचार–व्यवहार की महत्ता समझानेवाले विचार ही हैं। आचार का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किये बिना जीवन में उसका आचरण करनेवाले लोगों में प्रायः जडता, शुष्कता एवम् भेड़चाल वृत्ति का दर्शन होता है।

क्रिया व आचार का एक ही मूलभूत अर्थ है। द्रव्य, काल, क्षेत्र एवम् भाव के माध्यम से क्रियाओं का रहस्य आत्मसात्...अवगत करना चाहिए।

आचार का स्वरूप एक तरह से नदी के आकार जैसा है और विचार का स्वरूप मेघ के जल जैसा। परिणामतः विचार के बल पर आचार रूपी नदी के नये आकारों की संरचना की जा सकती हैं।

जिस जिस युग में बुरे अथवा अच्छे आचार–व्यवहार की उत्पत्ति हुई हो वह उस युग के बुरे अथवा अच्छे विचारों का ही परिणाम है, यह निर्विवाद... चौकस समझ सकते हैं।

वैचारिक बलवाला व्यक्ति द्रव्य, क्षेत्र, काल एवम् भाव के अनुसार आचरण करने की विद्या का जानकार होने के कारण शास्त्रवेत्ता गीतार्थ बन, जैन शासन को सुचारु ढंग से चलाता है और अपने अनुयायियों को मोक्ष–पद की ओर अग्रसर करता है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

५. जीवन–पुष्प की सुगन्ध–नैतिकता

वस्तुतः नैतिक यम के सिद्धांतों का स्वीकार किये बिना संसार में रहे लोगों को चिर शांति की प्राप्ति कभी नहीं होती। इसी तरह नैतिक गुणों के अभाव में सिर मुँडा कर साधु बननेवाले व धर्माचार्यों को भी प्रभुत्व की प्राप्ति नहीं होती।
–श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

पालघर
दिनांक : २३–१२–१९११

विद्वत्ता के साथ नीति होती है, ऐसा नियम कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। अरे, नीतिधर्म को लेकर निरंतर व्याख्या, प्रवचन व उपदेश झाड़नेवालों में भी प्रायः उनके द्वारा की गयी भाषणबाजी की तरह नीति धर्म का अंश तक नहीं होता। ठीक उसी भाँति अज्ञानियों में भी सर्वत्र नीतिधर्म नहीं हो सकता। वैसे ही लम्बा तिलक...मधुरी बानी के प्रतिनिधि व्यक्तियों में भी हमेशा नैतिकता...नीति सम्बन्धित आचार–विचार दिखाई नहीं देते।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह एवम् ममता के त्याग रूपी यम को नैतिकधर्म की संज्ञा दी गयी है।

यम अथवा नैतिकधर्म से भ्रष्ट हुई दुनिया अपने हाथों अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मारती है...मसलन वह स्वयं ही नरक की रचना करती है। और दो कदम आगे बढ़ कर असह्य वेदना व घोर दुःखों को न्यौता देती है।

ऐसी स्थिति में उच्च तात्त्विक ज्ञान व सत्समागम ठीक वैसे ही प्रथम नैतिक श्रम के सोपान पर चढ़े बिना समाधि की आशा करना, यह नितांत आकाश कुसुमवत् सदृश निरी मिथ्या कल्पना है।

वस्तुतः नैतिक यम के सिद्धांतो का स्वीकार किये बिना संसार में रहे लोगों को चिर शांति की प्राप्ति नहीं होती। इसी तरह नैतिक गुणों के अभाव में सिर मुँडा कर साधु बननेवाले व धर्माचार्यों को भी प्रभुत्व की प्राप्ति नहीं होती।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अनीति से प्राप्त–प्रभुत्व भी प्रायः पूर्णिमा के चंद्र की भाँति सदाकाल...सदैव टिक नहीं सकता। परिणाम स्वरूप समस्त संसार के बालकों को शैशव से ही सदाचारी व नैतिकता के प्रतीक ऐसे सुयोग्य अध्यापक रखकर, नैतिक शिक्षा देनी चाहिए।

नैतिक सदाचार के बिना सर्वोत्तम मानवयोनि में किसी की गणना नहीं होती।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

६. गुरु भक्ति– चिन्तामणिरत्न

सद्गुरु की भक्ति कल्पतरु तुल्य है।
परन्तु ऐसे विरले ही गुरु भक्त होते हैं.
जो श्रद्धापूर्वक बिना ननुच किये गुरु आज्ञा
को सर्वोपरि मानते हैं। विडम्बना तो यह
है कि अधिकांश शिष्य गुरु के अवगुणा
को ढूँढने में अपना अमूल्य समय नष्ट
करते हैं।
यदि शिष्यगण गुरु पर अखंड
निरूपाधिक श्रद्धा रखेंगे तो उनका
कल्याण निश्चित है।
–श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

श्रीगाँव
दिनांक

गुरु–भक्ति करते हुए यदि अनेकविध विघ्न व आपत्तियों का पहाड़ टूट पडे, फिर भी भक्तजन गुरु–भक्ति से विमुख नहीं होते...परामुख नहीं होते।

शिष्यों को प्रायः निष्कामवृत्ति से गुरु–सेवा करनी चाहिए। यदि शिष्य निर्धार करे तो गुरु–आचरण से बहुत कुछ बोध–प्रतिबोध आत्मसात् कर सकता है। लेकिन स्वच्छंदी शिष्यों को प्रायः गुर्वाज्ञा प्रतिकूल प्रतीत होती है और गुरु का उपदेश भी उनके लिए विपरीत परिणाम देने वाला प्रतीत होता है।

गुरु–भक्ति एक प्रकार से आवश्यक कार्य होने के कारण शिष्यों को प्रायः उसका अनुसरण करना चाहिए।

जिसका ध्यान गुरु के गुणों मे नहीं रहता और जो सदैव गुरु–निंदा करने से तनिक भी नहीं अघाता, ऐसा शिष्य गुरु–भक्ति से सदैव कोसों दूर रहता है। फलतः वह गुरु–भक्त कहलाने का अधिकारी नहीं रहता। गुरु के वचन व वाणी के प्रति जिसमें श्रद्धा–भाव नहीं है, ऐसी अश्रद्धा वाला शिष्य यदि बीस–पच्चीस वर्ष तक गुरु–सान्निध्य में रह जाय तो भी वह गुरु–उपदेश को अपने हृदय में उतारने के योग्य कदापि नहीं बन सकता।

गुरु के सान्निध्य में रहने वाले तथा गुरु द्वारा दीक्षित (मुँडे हुए) सभी गुरुभक्त ही होते हैं सो बात नहीं है। भगवान जब समवसरणारुढ होकर उपदेश प्रदान करते थे तब श्रद्धालु व पाखण्डी दोनों उपदेश श्रवण करते थे। लेकिन पाखण्डी तीर्थंकर भगवान के उपदेश का मिथ्या निरुपण करते थे... गलत अर्थ लगाते थे. इसमें

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पाखण्डियों का अनाधिकार ही दोषमूलक है। उसी तरह गुरु–उपदेश की विपरीत व्याख्या प्रतिपादित करने वाले गुरुभक्त नहीं हो सकते, इसमें उनकी दोष–दृष्टि के ही दर्शन होते हैं।

वस्तुतः तलवार की धार पर चलना सरल है। किंतु गुरुभक्ति करना दुष्कर कार्य है। आमतौर से गुरूभक्ति करते हुए गुरुभक्त को उनकी आज्ञानुसार ही अपने तन, मन व वाणी में परिवर्तन लाना चाहिए। तभी तो खड्ग–धार पर चलना जितना मुश्किल...दुष्कर है, उससे अधिक दुष्कर कार्य गुरुभक्ति में स्थिर रहना है।

गुरु की उत्तमोत्तम भक्ति की अवस्था में उनकी आज्ञा का कारण नहीं पूछा जाता और गुर्वाज्ञा में ही सर्व हित समाहित है, ऐसी संपूर्ण श्रद्धा रखनी पड़ती है। ठीक उसी तरह उनकी आज्ञा को ही धर्म मानना पडता है। ऐसी भक्ति करनेवाले भक्तगणों को प्रायः उद्वेग, भय लज्जा एवम् दुर्जनों के कुबोध का सर्वस्व परित्याग करना पड़ता है। वर्तमान में इस तरह के भक्त कहीं दृष्टिगोचर नहीं होते और जो हैं उनकी संख्या नगण्य ही हैं।

आत्म–ज्ञान की प्राप्ति के लिए शिष्य को गुरु–भक्ति में लीन हो, अपनी शंका–कुशंकाएँ एवम् प्रश्न पूछने चाहिए। कई बार अवसर आने पर स्वयं को शिष्य अथवा भक्त कहलानेवाले भी गुरुभक्ति से मुँह मोड लेते हैं। जब कि उत्तम भक्त अथवा शिष्य इति से अंत तक गुरुभक्ति में दत्तचित्त...सुदृढ रह, आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने में सफल हो सकते हैं। फलतः ऐसे ही अनन्य भक्त व शिष्य गुरु–हृदय को आकर्षित कर उनकी कृपा...महर नजर के अधिकारी बनते हैं।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

७. गुरु–कृपा सर्व सुखदयिनी

गुरु–कृपा प्राप्ति करने के लिए
गुरु के प्रति अखंड श्रद्धा रखनी
चाहिए। चाहे, शिष्य को प्राणान्त
भी करना पड़े तो भी गुरु की
छत्रछाया उसे कभी नहीं छोड़नी
चाहिए। गुरुभक्ति सब सुखों की
मुख्यतः शाश्वतसुख की कल्पबेल है।
–श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

सिरीगाँव
दिनांक : ३०–१२–१९११

उत्तम शिष्य प्रायः सद्गुरु की सेवा में सर्व शक्तियों को समर्पित कर देता है... आत्मभोग देता है। वस्तुतः ऐसे शिष्य उत्तमोत्तम गुरुभक्ति के माध्यम से इस संसार में उत्तम गति को प्राप्त होते हैं।

प्रेमलक्षणा भक्ति द्वारा शिष्य अपने गुरु के मन को सहज ही आकर्षित कर सकता है। गुरु–उपदेश श्रवण करने के लिए वह सदैव तत्पर...आतुर रहता है। गुरु को प्रसन्न कर हमेशा आत्महित की शिक्षा ग्रहण करता है। गुरु द्वारा दी गयी अप्रिय सीख...सिखावन को भी वह अमृतपान सदृश मानता है। ठीक वैसे ही गुरु देव उलाहने को भी वह उनकी कृपा–प्रसादी के रुप में सहर्ष अपनाता है।

सुपात्र विनयी शिष्य की यह कदापि इच्छा नहीं होती कि गुरुदेव उसे मान–सम्मान प्रदान करें। जबकि कुलवालुक व विनयरत्न सदृश दृष्ट शिष्य बृहस्पति जैसे अपने गुरु होने के उपरांत भी उनके गुण ग्रहण करने में असमर्थ सिद्ध होते हैं। और उनके उपकार का बदला अपकार से चुकाते हैं।

भले ही प्राणार्पण करना पडे, शरीर नष्ट हो जाय या फिर असंख्य संकटों का सामना करने का प्रसंग आ जाय तो भी उत्तम शिष्य अपने गुरुदेव का अपमान हो...उनके मन को जरा भी ठेस पहुँचे ऐसी कामना कभी नहीं रखते। बल्कि प्रायः वे उत्कट भाव से गुरुभक्ति में लीन–तल्लीन रहते हैं। साथ ही निज आत्मा...तन–मन गुरुचरण में समर्पित किया होने के कारण सदैव गुर्वाज्ञा में रहते हैं।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उत्तम भक्त या शिष्य भक्ति कर गुरु से उसके बदले में फल की इच्छा नहीं करते। ठीक उसी तरह जमीन जला कर अनाज बोने की प्रक्रिया की भाँति व्यक्ति के उल्लास व उत्साह की होली जला कर बेगार की तरह भक्ति नहीं करते।

सर्व देशों में सर्वोत्तम भक्तजन पैदा हों!!

राजभक्ति की भाँति गुरुभक्ति भी कभी किसी से छीपी नहीं रह सकती। विषय–वासना सम्बन्धित भक्ति का विपरीत...गलत उपयोग करनेवाले वास्तव में भक्ति–सोपान से च्युत होकर वैषयिक–बंधनों में जकड जाते हैं।

जगत् सेवा, सभी का भला करना, बुराइयों का परित्याग आदि का समावेश भक्ति में होता हैं। अतः भक्तिमार्ग पर विचरण करनेवाले लोगों में शुद्ध प्रेम, दया, भातृत्वभाव व परोपकार की भावना कूट–कूट कर भरी पड़ी होती है। लोहचुम्बक की तरह भक्ति में भी अद्‌भुत आकर्षण शक्ति होती है। परिणामस्वरूप भक्तगण कहीं भी छिपे नहीं रह सकते।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

८. गुरु कृपा– अमृत–वृष्टि

गुरुजी के उपदेशों का चिन्तन–
मनन और निदिध्यासन करने
से शिष्य के मन में अनेक
शुभ नवीन विचारों का उदय
होता है। जैसे रवि की किरणों
से कमल का खिल कर सौरभ
फैलाना।
–श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

दिनांक : १–२–१९१२

जिन गीतार्थ गुरु के सुपात्र व विनयी शिष्य होते हैं निस्संदेह के संसार में परोपकारी कार्य तथा जैन शासन की उन्नति के कार्य करने में सदैव समर्थ होते हैं। सुपात्र साधु शिष्य गुरु के कहे बिना ही उनके अभिप्राय को संकेत मात्र से ही समझ कर उनके प्रिय धार्मिक कार्यों को अपनी शक्ति व सहयोग से गति प्रदान करते हैं।

प्राणांतोपरांत भी गुरु की आशातना नहीं करनेवाले सदैव उनकी सेवा में तत्पर रहनेवाले तथा गुरु के उपदेश का निरंतर अनुसरण करनेवाले शिष्यों के माध्यम से ही गुरुदेव धर्म–सेवा एवम् धर्मोन्नति के विविध कार्य संपन्न करने में प्रायः शक्तिमान् होते हैं।

शिष्य अपने में रहे विनय, विवेक, भक्ति, गुणदृष्टि व गुरु श्रद्धा के बल पर प्रायः गुरु देव की आराधना करने में सन्नध्य होता है। वैसे ही परम भक्ति से उनके चित्त को प्रसन्न कर उनसे तात्त्विक–ज्ञान संपादन करता है।

गुरुदेव द्वारा प्रसन्न होकर प्रदत्त धार्मिक ज्ञान शिष्यों के हृदय में अच्छी तरह पल्लवित हो, शुभ व मंगल परिणाम लाता है।

शिष्य अपने कर्तव्य व अधिकार को समझ, अहर्निश गुरुसेवा में तत्पर रहे। क्योंकि गुरु देव की आज्ञानुसार आचरण करने से शिष्य के हृदय में धर्म की लौ प्रकटित होती है।

गुरु देव का कथन...वचन अनेक प्रकार के आशय से युक्त होते हैं। अतः उनका अर्थ समझ में न आये फिर भी उसके प्रति संदेह नहीं करना चाहिए, बल्कि

For Private and Personal Use Only

उसके आशय को समझने का प्रयत्न करते हुए गुरु देव से सविनय प्रश्न पूछ कर वचनों के आशय को आत्मसात् करना चाहिए।

वक्ता पुरुष के सर्व आशय...संपूर्ण अर्थ उनके कथन से व्यक्त नहीं होते। अतः वक्ता पुरुष के मन को समझने का प्रयत्न करना चाहिए। हृदय में जितने विचार उत्पन्न होते हैं, उतने वाणी के माध्यम से अभिव्यक्त नहीं कर सकते। फलतः वक्ता के हृदय में रहे सभी आशय में से कई प्रकट नहीं हो सकते, बल्कि भीतर ही उमड–घुमड कर रह जाते हैं।

यहाँ पर प्रतिदिन अभिनव ज्ञान की उत्पत्ति होती रहती है। परिणामस्वरूप नित्य प्रति पहले की अपेक्षा निरंतर तथाकथित आशय में परिवर्तन होता रहता है।

अतः अमुक प्रकार के विचारों को परिलक्षित कर किसी वस्तु...बात के सम्बन्ध में मत तय कर सकते हैं। वस्तुतः तात्त्विक स्थिर नियमों का ज्ञान सदा–सर्वदा दो दूनी चार गुणी सदृश ही होता है।

विचार सम्बन्धित संयम रखने से नित्य नया ज्ञान संपादन–आत्मसात् करने का अवसर प्राप्त होता है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

९. सत्संगति पारसमणि

पारसमणि के स्पर्श मात्र से लोहा
सुवर्ण में परिवर्तित हो जाता है।
किन्तु पार्श्वमणि लोहा नहीं बनता।
इसी तरह सत्पुरुष प्रायः अपने
संगी–साथियों को स्वयं के रंग में
रंग कर अपने जैसा बनाते हैं।
–श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

दीव–दमण
दिनांक : ६–२–१९१२

दुर्जन मनुष्य की संगति से मानसिक संताप होता है। उसी तरह उत्तम महात्माओं के लिए भी दुर्जन की संगत उद्वेग में वृद्धि करनेवाली होती है।

जबकि सज्जन मनुष्य को दुःख पहुँचाने के उपरांत भी वह पिली...पेरी हुई ईख की तरह रसता प्रदान करती है, जबकि दुर्जन व्यक्ति का यथेष्ट प्रमाण में मान–सम्मान करने के उपरांत भी वह सताये बिना नहीं रहता।

दुर्जन और मूर्ख को सच्चे मित्र की पहचान नहीं होती। दुर्जन दूसरों के दोष ही खोजता रहता है। हाँलाकि सत्पुरुषों की संगति से कोई भी पापी सज्जन बन जाता है। सज्जन दुर्जन की करतूत से मन में किसी प्रकार का खेद अनुभव नहीं करते। उत्तम पुरुष प्रायः दूसरों में रहे सद्गुण ग्रहण करते हैं। और निरंतर उन्हें उच्च मार्ग पर अग्रसर करने के लिए प्रयत्नशील होते है। ठीक उसी तरह अनेक प्रकट के संकट आपत्ति–विपत्तियाँ सह कर भी दूसरों को सद्गुण प्रदान करने के लिए प्रयत्न करते रहते हैं।

दुर्जनों द्वारा प्रदत्त आधि, व्याधि व उपाधि के बिना इस संसार में सज्जन लोगों को परख नहीं सकते। दुर्जन व्यक्ति उत्तम व्यक्तियों को अपार व असहनीय दुःख...पीडा पहुँचाने में कोई कोर–कसर उठा कर नहीं रखते। वे प्रायः अच्छी बात का भी विपरीत अर्थ लगाने में भी आगे–पीछे नहीं देखते। लेकिन ऐसे दुष्ट पाखण्डियों को भी सज्जन पुरुष प्रयत्नों की पराकाष्ठा कर अपने वैचारिक ढाँचे में ढाल कर अपने जैसा बनाते हैं।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बिना गुणदृष्टि के यदि सज्जनों को संगति में रातदिन अहर्निश रहने का अवसर आजाय फिर भी उनके सत्संग...सहवास का पूरा लाभ प्राप्त नहीं कर सकते। क्योंकि दुर्जन प्रायः अपनी मिथ्या दृष्टि के कारण सज्जनों के आचार–विचार व व्यवहार का विपरीत अर्थ निकालते हुए अहितकारी परिणाम पैदा करते हैं।

हाँलाकि पार्श्वमणि के स्पर्श मात्र से लोहा सोना बन जाता है। किन्तु पार्श्वमणि भूल कर भी कभी लोहे में परिवर्तित नहीं होता। इसी तरह सत्पुरुष प्रायः अपने संगी–साथियों को स्वयं के रंग में रंग कर अपने जैसा बनाते हैं।

अतः हे चेतन! उत्तम सद्गुणों की तेज–रश्मियाँ बिखेरने के लिए तुम सदैव पुरुषार्थ करो !!

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१०. शुभकर्म– विकास का स्वर्ण–सोपान

आहिस्ते–आहिस्ते नियोजित
कर्मयोजना को पूरा करते रहो।
अच्छे कार्यों में विघ्न आते ही
रहते हैं। उक्त विघ्नों से कदापि
भयभीत न हों। विघ्नों के निवारणार्थ
संघर्ष करते रहो। श्रीवीर प्रभु के भक्त
संघर्ष के काँटो को दूर कर सुख–
शान्ति के फूल प्रस्फुटित करते हैं।
–श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

वलसाड
दिनांक : २२–१–१९१२

हे चेतन! संसार में रहे लोगों के सम्पर्क...सम्बन्ध में आये बिना छुटकारा...मुक्ति नहीं है। इसी तरह स्वयं के विचार...मत से भिन्न मत...विचार रखनेवाले लोग भी तुम्हें इस धरती पर बारी–बारी से मिलते ही रहेंगे। अतः यदि तुम अन्यजनों के संसर्ग...सहवास से ऊब जाओगे तो भी तुम्हारा कुछ चलनेवाला नहीं है।

ऐसी परिस्थिति में तुम्हें चाहिए कि तुम जब अन्य मतावलम्बियों के सम्पर्क...संसर्ग में आओ तब उन्हें अपने सुविचार...मत से अवगत करो और उनके समागम का तिरस्कार न करते हुए प्रायः उन्हें उच्च बोध प्रदान करते रहो। सदैव विवेक–दृष्टि का उपयोग कर परस्पर कल्याणकारी प्रवृत्तियों को कार्यान्वित करते रहो। साथ ही जिन विषयों की बाबत में भूल होती हो, दुबारा उन भूलों की पुनरावृत्ति न हों; इसकी सावधानी बरतते रहो। उसी तरह जिन दोषों का सेवन करते हों उनको छोड़ने का प्रयत्न करना चाहिए और प्रतिक्रमण कर पुनः अग्रसर होने का उपक्रम करना चाहिए।

हे चेतन! जब तक तुम इस शरीर में वास करते हो तब तक तुम्हें प्रायः इसी प्रकार का आचरण करना चाहिए। यदि कभी कर्म के जोर के आगे तुम्हारा बस न चले और तुम्हें पीछेहट करनी पडे तब भी अहर्निश अग्रसर बढने के मार्ग को भूल कर भी कभी परित्याग नहीं करना चाहिए; बल्कि निरंतर आगे बढ़ते रहना चाहिए।

निर्धारित मार्ग से गुमराह होने पर तुरंत ठोकर लगती है। अतः उपयोग से ही धर्म सूक्ति को अक्षरशः सत्य मान, सभी दृष्टि से विचार कर तुम निरंतर आगे

For Private and Personal Use Only

बढ़ते रहो। भव–भवान्तर में उपार्जित कर्म यदि उदित होकर अपने विविध रंग प्रदर्शित करें, फिर भी तुम हिम्मत न हारना...साहस न खोना। क्योंकि संसार में ज्ञानावरणीय इत्यादि कर्मों का क्षय किये बिना मुक्ति संभव नहीं है।

आहिस्ते–आहिस्ते नियोजित कार्य–योजना को पूरा करते रहो। संभव है ऐसा करते हुए यकायक तुम्हें फलनिष्पत्ति के चिह्न दृष्टिगोचर न भी हो, तथापि सद्गुण प्राप्ति के अभ्यास को तिलाञ्जलि नहीं देनी चाहिए। कारण अच्छे कार्यों में सदैव विघ्न आते ही रहते हैं। अतः उक्त विघ्नों से कदापि भयभीत न हो, बल्कि निरंतर संघर्ष करते रहो। क्योंकि इन संकट, विघ्न व उपाधियों से संघर्ष किये बिना तुम्हारी गणना श्रीवीर के भक्तों में कदापि नहीं हो सकतीं।

हे चेतन! इस तथ्य को कभी न भूल कि कर्म के संयोग से क्रोधादि दुर्गुण प्रकटित होते हैं। अतः तुम अपनी शक्ति पर दृढ विश्वास रख, नित्यप्रति अभ्यास करते रहो। ऐसी उत्तमोत्तम धार्मिक सामग्री प्राप्त कर कई प्रकार के शुभ कार्य सम्पन्न किये जा सकते हैं। अतः प्राप्त शक्तियों का दुर्व्यय करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

हे चेतन! निस्संदेह तुम्हारा धार्मिक अभ्यास व तुम्हारे मन में उत्पन्न शुभ विचार ही तुम्हें उच्च पद पर आरुढ करेंगे

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

११. सफलता का राजमार्ग

एक साथ अनेक कार्यों का दायित्व उठा कर उन्हें न करने के बजाय एक बार एक ही कार्य का दायित्व उठा, पूरी शक्ति के साथ परिपूर्ण करना, सफलता हाँसिल करने का राजमार्ग हैं।
—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

वलसाड
दिनांक : २०—१—१९११

जीवन में सर्व कार्य विवेक—दृष्टि रख कर ही क्षीर—नीर नीति से सम्पन्न करने का अभ्यास रखना चाहिए। कारण इस तरह कार्य करने से किसी प्रकार की त्रुटि नहीं रहती।

जो कार्य किये जाय उसकी संख्या पर ध्यान न देते हुए कितने कार्य सफलता के साथ पूरे किये, इस बात पर प्रायः लक्ष्य केन्द्रित करना चाहिए। क्योंकि जो भी कार्य करो सफलता के साथ करो। प्रस्तुत वृत्ति को अपना कर उत्तमोत्तम कार्य सम्पन्न कर सकते हैं।

जिसकी फल—निष्पत्ति उत्तम हो, ऐसी क्रियाएँ करने में हमेशा आत्मिक—शक्तियों का उपयोग करना चाहिए। जो भी कार्य किया जाय पहले उसकी अच्छी तरह जाँच—पडताल करनी चाहिए और प्रत्येक कार्य करते हुए उसमें नया अनुभव प्राप्त करना चाहिए। एक साथ अनेक कार्यों का दायित्व उठा कर उन्हें न करने के बजाय एक बार एक ही कार्य का दायित्व उठा, पूरी शक्ति के साथ परिपूर्ण करना, जीवन में सफलता हासिल करने का राजमार्ग है।

नियमित रूप से अनुक्रम लगा कर पूरी क्षमता के साथ कार्य करने की आदत डालने से उक्त कार्य करते रहने से आत्मिक शक्ति का नियमित रूप से उपयोग होता है।

शास्त्रों के आधारानुसार श्रमण...साधु के आचार—विचारों की भी नियम पद्धति से रचना की गयी है...सूत्रबद्ध किया गया है। अतः आत्मिक शक्ति प्राप्त करने

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

के आचार–विचारों का भी कालःक्रम नियमानुसार सेवन करना चाहिए।

नियमित रूप से समयानुसार कार्य करनेवाला ही सही समय का मूल्यांकन कर सकता है और अपने कार्यकलाप से दूसरों पर प्रभाव डाल सकता है। अंग्रेज अथवा विदेशी अपने निश्चित कार्यक्रमानुसार ही सर्व कार्य पूरे करता है। फलतः प्रवृत्ति–मार्ग के जननायक के रूप में सर्वत्र उनकी पूजा–आराधना होती है। तत्कालीन आर्यावर्त में भी काल–क्रम नियम पद्धति से सभी कार्य सम्पन्न करने का प्रचलन...परम्परा थी। लेकिन वर्तमान में शिक्षा के अभाव के कारण नियत समय पर कार्य करनेवालों की संख्या अल्प प्रमाण में है। वस्तुतः समयानुसार कार्य करने की पद्धति इस देश में चाहिए। इस प्रमाण में अभी पद्धति प्रचलित नहीं हो पायी है। अलबत, अल्पस्वरूप प्रमाण में ही सही उक्त पद्धति का अवलम्बन अवश्य होता है। लेकिन वह नहींवत् ही है। यदि संपूर्ण साधु–संस्था निश्चित कार्यक्रमानुसार काम करना आरम्भ कर दे तो निस्संदेह वह सफलतापूर्वक कई कार्य सम्पन्न कर सकती है। अरे, जापान की सामान्य महिलाएँ तक कार्यक्रमानुसार ही प्रत्येक कार्य करती हैं। फलस्वरूप उनका देश दिन दुगुनी रात चौगुनी प्रगति करने में सफल हुआ है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१२. निष्काम भाव से शुभकर्म करो

'निष्काम' शब्द से भौतिक कामना (= अर्थ एवं काम की इच्छा) रहित

यदि अपना कार्य योग्य व उपयुक्त है, यह तथ्य ध्यान में आ जाय तो दूसरों का अभिप्राय जानने व सुनने की इच्छा नहीं करनी चाहिए।
—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

वलसाड
दिनांक : २१–१–१९१२

उपदेश प्रदान करना व ग्रंथ–लेखन आदि धार्मिक कार्यों को सम्पन्न करते समय भूल कर भी कभी लोग तुम्हारी प्रशंसा करे...गुणगान करे ऐसी भावना अपने मन में नहीं रखनी चाहिए, अपितु यथाशक्ति अपना कर्तव्य समझ, नियमित रूप से धार्मिक कार्यों को अंजाम देते रहना चाहिए। साथ ही लोकमत क्या है, इसका तनिक भी विचार किये बिना वह अच्छा, उपयुक्त व योग्य है या नहीं, इसका ही निरंतर विचार करना चाहिए। यदि तुम्हारा कार्य उत्तम व उपयुक्त है तो उसके सम्बन्ध में दूसरों का अभिप्राय जानने व सुनने की कतई इच्छा नहीं करनी चाहिए।

सुंदर, सर्वोत्तम पारमार्थिक कार्य करते समय अच्छे या बुरे जनमत की परवाह नहीं करनी चाहिए। जीवन में ऐसा कठोर निर्णय कर सदैव सत्मार्ग पर प्रवृत्त होने का एकमेव लक्ष्य रखना चाहिए। जो कोई आत्मा...जीव महात्माओं की परमोत्कर्ष कोटि पर स्थित हों, उन्हें उपर्युक्त सीख को ध्यान में रख, प्रायः उत्तमोत्तम धार्मिक कार्य सम्पन्न करते रहना चाहिए।

उत्तम धार्मिक कार्यों को अंजाम देते हुए यदि लोकपवाद का शिकार बनना पड़े, फिर भी निर्धारित कार्य सफलता के साथ सम्पन्न करने का अभ्यास सदैव करते रहना चाहिए। समस्त संसार के प्रशंसोद्गार, गुणगान व जयजयकार के प्रति महात्मा प्रायः उदासीन होते हैं। बल्कि वे उसे सिर्फ इतना ही महत्त्व देते हैं कि गृहस्थों को हमेशा अपना फर्ज़ निभाना चाहिए और उनके हृदय में स्फुरित शुभ विचार ही महज उनके मन में मेरे प्रति रही अनन्य श्रद्धा व सम्मान के प्रतीक हैं। गुरु जी अपनी

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निन्दा–स्तुति से तनिक भी विचलित–प्रफुल्लित नहीं होते। वे निष्काम भाव से अपने कर्तव्य पथ पर अग्रसर होते हैं। और अपने धार्मिक कर्तव्य निभाने से च्युत नहीं होते।

लोगों के मान–सम्मान की कामना कर प्रायः उपदेश प्रदान व ग्रंथ–लेखनवाले कभी–कभार मान–सम्मान न मिलने पर मन ही मन आघात अनुभव करते हैं और शुभ–कार्यों से दो कदम दूर रहते हैं। जबकि निष्काम भाव से धार्मिक कार्यों को अंजाम देनेवाले महात्मागण कभी दुःखी नहीं होते और ना ही शुभ कार्यों से दूर रहते हैं।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१३. सच्चा कर्मयोगी

जिसके विरोध में कोई दुर्जन नहीं होते
ऐसे महात्मा के गुण कभी प्रकट नहीं होते।
—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

बलसाड
दिनांक : २२—१—१९१२

ईर्षालु व्यक्ति तुम्हारे विरोध में नाना प्रकार की बातें करें अथवा अफवाह फैलाये, फिर भी हे आत्मन्! उस ओर भूल कर भी कभी तुम ध्यान न दो! किसी प्रकार के मान—सम्मान...कीर्ति व अन्य बाबतों की स्पृहा किये बिना निरंतर ग्रंथ—लेखनादि कार्य करते रहने के उपरांत भी यदि ईर्षालुजन महात्माओं को कीर्ति, मान—सम्मान, पूजा—अर्चनादि प्रलोभनों के माध्यम से कलंकित...निंदित करने का लाख प्रयत्न करें तो भी उन्हें अपनी कार्य—निष्ठा (धार्मिक—कार्य) से कभी पीछेहट नहीं करनी चाहिए। यदि स्वंय उत्तमोत्तम कार्यों में प्रवृत्ति करने में सक्षम हो और उसके कारण दुर्जन मारे ईर्षा के नीचा दिखाने के लिए अभद्र शब्दों का प्रयोग करता हो, फिर भी उसकी परवाह किये बिना हमेशा जनोपकारी प्रवृत्तियों को तिलाञ्जलि नहीं देनी चाहिए और ना ही दुर्जनों के अपशब्द सुनने चाहिए।

अपना कार्य पूरा करने में अत्यंत धैर्य धारण करना चाहिए। जिसका कोई शत्रु न हो या जिसके विरोध में कोई दुर्जन नहीं होते ऐसे महात्मा के गुण कभी प्रकट नहीं होते। सूर्योदय के पूर्व कौएँ काँव—काँव करते हैं, इससे सूर्य अपने कार्य का परित्याग नहीं करता ?

सभी लोग प्रशंसा करें ऐसा ही कार्य करना चाहिए, यह कभी संभव नहीं है। फलस्वरूप पारमार्थिक कार्य करनेवालों की कैसी भी निंदा...अपमान—अवहेलना क्यों न हों, फिर भी ऐसे परमोपकारी महात्मागण अपने मन, वचन व कार्य के परमार्थ

For Private and Personal Use Only

से कभी विचलित नहीं होते। कई जातियों में विवाह के प्रसंग पर सगुरल–पक्षीय महिलाएँ दूल्हे को उलाहना देती हैं... उसकी ठठोली करती हैं। लेकिन इससे कहीं दूल्हा बिना विवाह के थोड़ा रह जाता है। वैसे ही परमोपकार के कार्य करने में महात्मागण प्रायः लीन–तल्लीन रहते हैं।

निष्काम–वृत्तिवाले बुद्धिमान महात्माओं को धार्मिक कार्य करने में अनूठे आनन्द का अनुभव होता है। अतः परोपकारी धार्मिक कार्य किये बिना वे जीवित नहीं रह सकते।

हे आत्मन्! इसी तरह तुम भी निष्काम बुद्धि से प्रेरित हो, उपदेश व ग्रंथ–लेखन के कार्य सदैव करते रहो

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१४. पर उपदेश कुशल बहुतेरे

बाह्यतौर पर ज्ञान–प्राप्ति कर जो उपदेशक उपदेश देने निकल पडते हैं, वह अपने उपदेश से अन्यजनों को लाभ के बजाय नुकसान पहुँचा सकते हैं। साथ ही योग्यता विहीन उपदेश भी प्रायः निष्फल जाता है।
–श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

बिलीमोरा
दिनांक : २४–१–१९१२

बाह्यतौर पर ज्ञान–प्राप्ति कर जो उपदेशक उपदेश देने निकल पडते हैं वे अपने उपदेश से अन्यजनों को लाभ के बजाय नुकसान पहुँचा सकते हैं। साथ ही योग्यता विहीन उपदेश भी प्रायः निष्फल जाता है।

वही उपदेशक उत्तम... श्रेष्ठ माना जाता है, जिसकी वाणी से निरंतर सद्‌गुणों का ही लाभ हो सकता है। गुणानुराग, मध्यस्थ गुण (तटस्थता) व शुद्ध हृदयगुण के बिना किये गये उपदेश की अचूक असर कदापि नहीं होती। वास्तव में देखा जाय तो वही उपदेश उत्तम होता है, जिस उपदेश के माध्यम से आत्मिक सद्‌गुण प्राप्ति की लालसा जगती है और दुर्गुणों से दूर रहने की बुद्धि पैदा होती है।

ठीक उसी तरह गुणानुराग व मध्यस्थ गुण के बिना उपदेश श्रवण करनेवाला भी उपदेश का रहस्य तथा मर्म आत्मसात् नहीं कर सकता। प्रायः उपदेश का बहुत–कुछ आधार उपदेशक के आचार–विचार पर निर्भर रहता है। अतः सुयोग्य उपदेशक एवं योग्य शिष्य का मिलन होता है तभी उपदेश की कींमत आंकी जा सकती है।

निस्पृह भाव से उपदेश देनेवाले को एकांत धर्म की प्राप्ति होती है। उपदेशक महान लाभ प्राप्त कर सकते हैं। हाँलाकि श्रोतावृन्द को इसका लाभ होता है या नहीं, इसका निश्चय नहीं कर सकते।

श्री, संपत्ति व राज्यदान से अधिक उपदेश दान अपने आप में श्रेष्ठ दान है। जिसका अध्ययन विपुल हो, जिसने अतिशय श्रवण किया हो और जिसका अनुभव विशाल हो, वास्तव में ऐसा उपदेशक ही सर्वोत्कृष्ट सुंदर उपदेश दे सकता है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उपदेशक साधु–महात्माओं को नित्यप्रति अपने आत्मा में गुण प्रकटित करने के विचार करते रहना चाहिए। शांत, दांत, त्यागी व बैरागी साधु प्रायः अपने उपदेश से दूसरों को काफी प्रभावित कर सकते हैं। जबकि जो आजीविका–उपार्जन हेतु उपदेश देते हैं, उनके उपदेश में एक से अधिक विचार व विषय आये बिना नहीं रहते।

उपदेशक प्रायः उपदेश का बीजारोपण सर्वत्र करता रहे। उसका परिणाम कभी भी कहीं भी अंकुरित होगा, इस तथ्य का अहसास कर उसे नियमित रूप से उपदेश–धारा प्रवाहित करते रहना चाहि

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१५. शुभ विचार – गंगाजल

नीच विचारों का हमेशा के लिए परित्याग करना हों तो अहर्निश शुद्ध विचारों में ही रमण करना चाहिए।
–श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

नवसारी
दिनांक : २७–१–१९११

नियमितरूप से चिंतन करने की आदत डालनी चाहिए। मन ही मन असीम विचार करते रहने से मस्तिष्क को नुकसान पहुँचता है।

प्रायः मानसिक उच्चता वृद्धिगत हो, ऐसे विचार करते रहने से शुभ संस्कारों में वृद्धि होती है। मैत्री आदि भावना को निरंतर अपने मन में संजोये रखने से आत्मिक शुद्धि होती है।

सर्वप्रथम रजोगुण व तमोगुण के विचारों को मन में से सर्वस्वी निकाल, सात्त्विक गुणों से उसे ठसाठस भर देना चाहिए। वैसे ही सात्त्विक विचार करने की आदत डालने से रजोगुण व तमोगुणात्मक विचारों का सहज में ही नाश होता है। सुविचार के कारण कुविचार स्वयं ही शांत हो जाते हैं।

चिंतनीय विचारों को हर्ष के विचारों में तब्दील करना चाहिए और अस्थिर विचारों को स्थिर। अपवित्र प्रेम के विचारों को पवित्र प्रेम के विचारों में परिवर्तित कर देना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि नीच विचारों का हमेशा के लिए परित्याग करना हों तो अहर्निश उच्च...शुद्ध विचारों में ही रमण करना चाहिए।

उच्च विचारों में व्याप्त मन प्रायः उच्च लेश्या के विचारों का अभ्यास करने में समर्थ सिद्ध होता है। और फिर एक बार शुद्ध विचारों का अभ्यास दृढ हो जाने पर अशुद्ध विचारों का यकायक प्रवेश होना प्रायः असंभव है। शुद्ध विचारों की शक्ति बढ़ जाने पर उसके मुकाबले अशुद्ध विचारों का जोर टिक नहीं सकता।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हर पल व हर क्षण मन में किस प्रकार के विचार उत्पन्न होते हैं, उसकी पूरी सावधानी बरतनी चाहिए और कौनसा विचार किस कारण उत्पन्न हुआ है, उसका ख्याल करना चाहिए। क्योंकि पश्चानुपूर्व से कैसे–कैसे विचारों की उत्पत्ति हुई, इसे जानने...आत्मसात् करने का अभ्यास करने पर उपयोग की वृद्धि होती है। और मानसिक विचारों को नियंत्रित कर सकते हैं।

नल का पानी जितना लेना हो, उतना ले सकते हैं। ठीक उसी तरह मन को भी नल का स्वरूप प्रदान कर, करने योग्य विचार ही करने चाहिए।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१६. तन्मयता

किसी भी कार्य को तन्मय होकर
करो, अवश्य सफलता मिलेगी।
तन्मय अर्थात् एकाग्रचित्त हो कर
किया हुआ कार्य मन को
प्रफुल्लित करता है। तन्मयता
में मन को संयमित करने की
अमोघ शक्ति है।
—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

सचीन
दिनांक : २८—१—१९१२

सद्गुण विहिन घटाटोप (आडम्बरः आवरण) अधिक समय तक निभ नहीं सकता। अपने में रहे सद्गुणों को प्रकटित किये बिना मानव अपनी कींमत समझ नहीं सकता।

कथनिक होने के बजाय कर्तव्यपरायण होकर अपना फर्ज़ अदा करने की आदत डालनी चाहिए। समय का सही मूल्यांकन करने की शक्ति अवगत होते ही मानव अपनी उन्नति करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता है।

दुर्गुणों का प्रायः विस्मरण कर निरंतर सद्गुणों के स्मरण व मनन में खो जाना चाहिए।

खाली दिमाग भूत का डेरा होता है और अव्यवस्था की भूलभूलैया में फंस, मार्गोन्मुख हो जाता है। अतः जो कार्य करना हो, उसमें मन को तन्मय करने की आदत डालनी चाहिए। अन्य राष्ट्र के लोग अपने निजी—जीवन के कार्यों में भी एकाग्र चित हो, स्वीकृत जिम्मेदारियों को सजगता के साथ निभाते हैं। फलस्वरूप जो कार्य करना हो, उसमें पूरी तरह समरस हो जाना चाहिए और जब दूसरा कार्य हाथ में लो तब उसमें तन्मय हो जाना जरूरी है। क्योंकि एक बार जिस कार्य को हाथ में लिया है, उसमें पूरी तरह समरस...तन्मय हो जाने से उक्त अर्थ भली—भाँति सिद्ध होता है। साथ ही कार्य का सही अनुभव प्राप्त होता है।

नियमित रूप से कार्य करते रहने से व उसमें एकाग्र चित होने का कारण हाथ में लिया कार्य सिद्ध होता है। अतः जो भी कार्य सम्पन्न करने हों, उसमें रुचि

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पैदा करनी चाहिए। इस तरह कार्य के प्रति रुचि रखने से सम्बन्धित कार्य सिद्ध होता है।

किसी भी कार्य में यदि मस्तिष्क को आवश्यक्ता से अधिक रोक कर मगजपच्ची करोगे तो निस्संदेह उसे बिगडने देर नहीं लगेगी। परिणाम यह होगा कि इच्छित कार्य कदापि सिद्ध नहीं होगा। जो कार्य करते हों, पूरी सावधानी बरत कर तरने चाहिए। ठीक वैसे ही तन्मय होकर कार्य करने से सम्बन्धित कार्य का अपूर्व ज्ञान प्राप्त होता है।

सुचारु रूप से कार्य संचालन करने की पद्धति का जब–जब मानव दृढता के साथ अवलम्बन करेगा तब–तब उक्त कार्य योग के उच्च शिखर पर आरुढ हो सकेगा। वास्तव में आंग्ल व अमरिकन नागरिक नियमित रूप से कार्य करने ही पद्धति तथा सम्बन्धित कार्य एकाग्रचित हो, करने के तरीके के कारण आज वह प्रवृत्ति–मार्ग के एकमेव योगी बन बैठे हैं।

हेतुतः अव्यवस्थित कार्य करने की पद्धति को तिलाञ्जलि दे कर व्यवस्थित कार्य–पद्धति अपनाने की अत्यंत आवश्यकता है। जिस बाबत या कार्य की जिम्मेदारी अंगीकार कर लो उसमें तन्मय होकर जुटना चाहिए। अर्थात् उसे अंजाम देते हुए मन का संयम करना चाहिए। क्योंकि मन को संयमित करने से ही कार्य–सिद्ध होती है। साथ ही आत्मशक्ति का विकास होता है। ठीक उसी तरह दूसरे भव में भी उक्त शक्ति का शीघ्र प्रचार होता है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१७. दानधर्म–मुक्ति–सोपान

दान से तीर्थंकर पद भी प्राप्त होता है। केवल ज्ञान प्राप्ति के अनन्तर भी तिर्थंकर देव उपदेश स्वरूप दान धर्म का सेवन करते हैं। इस तरह तीर्थंकर स्वयं भी दान धर्म सम्बन्धित अपना कर्तव्य अचूक निभाते हैं तो सामान्यजनों को भला इस सम्बन्ध में क्या कहना ?
–श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

सुरत
दिनांक : १–२–१९१२

दानधर्म के माध्यम से मानव उच्च गति प्राप्त कर सकता है। ममत्व का त्याग किये बिना तन, मन, धन व वाणी का दान असंभव है। स्वयं की वस्तुओं को अन्यजनों की भलाई के लिए उपयोग में लाना–खर्च करता ही प्रथम दानधर्म, परोपकार धर्म या सेवाधर्म है।

प्रायः द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव के अनुसार ही दान के भेदों का सेवन करना चाहिए। अरे, दान करने में भी विवेक की आवश्यकता है। संसार में मनुष्य जाने–अनजाने ही सही दान स्वरूप प्रदत्त धर्म सम्बन्धित विविध प्रवृत्तियाँ करता है। जब कि इसे अपना आद्य कर्तव्य समझ अथवा किसी तरह का प्रति फल पाने की लालसा का त्याग कर दान देने की आदत डालनी चाहिए।

अमरिका, यूरोप आदि विविध राष्ट्रों में दान प्रदान करने की विभिन्न प्रणालिकाएँ प्रचलित हैं। लेकिन आर्यभूमि में दान देने की प्रणालिका में समाहित गुप्त रहस्य उच्च कोटि के ज्ञात होते हैं।

विश्व में बिना दानधर्म के किसी का चल नहीं सकता। जिस तरह शरीरादि के पोषण हेतु कुछ भी लिये बिना नहीं चल सकता ठीक उसी तरह किसीको कुछ दिये बिना भी चल नहीं सकता। आदान–प्रदानक्रिया तो प्रकृति का अलिखित एकमेव नियम हैं।

अनजाने में एकेंद्रिय जीवों के देह का भी दान होता है। दान से परस्पर एक–दूसरे का उपकार होता है। वास्तव में बचपन से ही दान प्रदान करने की आदत डालनी

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चाहिए। प्रत्येक मनुष्य को दान प्रदान करने के लिए प्रेरित करने से महान लाभ होता है। जिस तरह एक बीज से असंख्य बीज उत्पन्न होते हैं उसी तरह एक बार दान देने मे लाखगुना लाभ होता है।

दानधर्म को शील, तप व भावना आदि तीनों धर्म से अग्रक्रम दिया गया है। उसके पीछे गहन रहस्य छिपा है। दानधर्म की सिद्धि किये बिना मानव उससे उच्च धर्म का यथायोग्य अधिकारी नहीं बन सकता।

दान से तीर्थंकर पद की प्राप्ति होती है। केवलज्ञान प्राप्ति के अनन्तर भी तीर्थंकर देव उपदेश स्वरूप दानधर्म का सेवन करते हैं। इस तरह तीर्थंकर स्वयं भी दानधर्म सम्बन्धित अपना कर्त्तव्य अचूक निभाते हैं तो सामान्यजनों को भला इस सम्बन्ध में क्या कहना ?

दान दिये बिना कभी नहीं रहना चाहिए। दान के कुल पाँच प्रकार हैं : अभयदान, सुपात्रदान, उचितदान, अनुकंपादान व कीर्तिदान। मानव को प्रायः ज्ञानदान, वस्त्रदान, अन्नदान एवम् औषधिदान का अपने जीवन में उपयोग कर निज आत्मा को परिपुष्ट करना चाहिए।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१८. दया धर्म का मूल है

यदि इस संसार में दयाधर्म का सार्वभोम राज्य प्रवर्तित हो जाय तो सचमुच यह दुनिया स्वर्ग से भी अधिक सुंदर व उत्तम बन जाय!
—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

सुरत
दिनांक : २—२—१९१२

ब्रह्माण्ड के सभी जीवों को अपनी आत्मा के सदृश मान, सदैव उनकी रक्षा करनी चाहिए। कारण दया समान इस दुनिया में कोई धर्म नहीं है।

निजात्मा के प्रति जैसा स्नेह, प्रेम व ममता प्रकट होती है, उसी प्रमाण में वैसा प्रेम, स्नेह व ममता संसार के अन्य जीवों के प्रति प्रकटित कर सभी की समान भाव से प्राणरक्षा करनी चाहिए। सर्व प्राणियों पर प्रेम—भावना की अमृत—वृष्टि करने हेतु प्रतिदिन अमुक समय निश्चित करना चाहिए। कोई व्यक्ति हमारा प्रिय पात्र... अनन्य प्रेमी हो, उसी जैसा स्नेह प्रेम भाव सर्व जीवों के प्रति प्रदर्शित करने हेतु प्रायः अमुक विशिष्ट पात्र...प्रेममूर्ति सदृश सर्व जीवों को मान लेना चाहिए और पशु—पक्षी, दीन—दुःखी, आबालवृद्ध व निराधार असह्य अपंग लोगों के प्राणों की रक्षा करने हेतु हमारे पास जो—जो शक्तियाँ हों, उनका खुले हाथ सदुपयोग करना चाहिए।

प्राणी मात्र के संरक्षणार्थ जिन—जिन शक्तियों का प्रयोग किया जाता हैं, उनका विकास हुए बिना नहीं रहता। यदि इस संसार में दया धर्म का सार्वभौम राज्य प्रवर्तित हो जाय तो सचमुच यह दुनिया स्वर्ग से भी अधिक सुंदर व उत्तम बन जाय।

प्रभु—मिलन का सिंहद्वार दया है। आत्मा को परमात्मा में परिणत करनेवाली शक्ति दया है।

एकेंद्रिय जीवों पर दया रूपी शीतल छाया करने वाले नरपुंगव साधु—महात्माओं के मन—मस्तिष्क में मन, वचन, काया से किसीका भी अशुभ करने की लेशमात्र भी भावना भला कैसे संभव है ? दया का अमृत—पान कर अपनी आत्मा

For Private and Personal Use Only

को पवित्र बनानेवाले साधु–संतों की जो संगति करते हैं, ऐसे लोग निस्संदेह अपनी आत्मा को निर्मल बना सकते हैं।

दया की उत्कृष्ट अवस्था को आत्मसात् कर सर्व जीवों पर दया करने की भावना से सदा–सर्वदा ओत–प्रोत रहना चाहिए।

दयाधर्म सम्बन्धित अपनी भूमिका दृढ करते ही अन्यान्य सद्गुण अपने आप प्राप्त हो जाते हैं। जगत् के जीवों की पूज्य माता दया है, मन में ऐसी धारणा धारण कर उसकी आराधना–उपासना करने हेतु सदैव तत्पर रहना चाहिए।

विशुद्ध प्रेम व दया के बिना दान भी नहीं दे सकते। जिनका हृदय–सागर दया के विचारों से लबालब भर कर रह–रह कर छलक रहा हैं, उनके मन में शत्रुत्व, बैरभाव, कलह, हिंसा, क्रोध, विश्वासघात आदि दुर्गुण भला कैसे रह सकते हैं ? अर्थात् कदापि नहीं रह सकते। अतः प्रतिदिन दयाभाव में लीन तल्लीन हो, प्राणियों की रक्षा करने में सन्नध्य रहे साथ ही उन्हें अभयदान प्रदान करें।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१९. सत्यं–शिंव–सुन्दरम्

यदि विश्व को सर्वोत्तम व सर्वांग सुन्दर बनाना हो तो सर्वत्र सुविचारों का प्रचार–प्रसार करना चाहिए।
–श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

सुरत
दिनांक : ४–२–१९१२

यदि विश्व को सर्वोत्तम एवम् सत्यम्...शिवम्...सुंदरम् बनाना हो तो सुभाषित–सुविचारों का सर्वत्र प्रचार–प्रसार करना चाहिए। सुविचारों का प्रवाह मेघ की भाँति जब निखिल जगत् में जहाँ–तहाँ जोर–शोर से प्रवाहित हो जाएगा वहाँ–वहाँ सदाचार रूपी अंकुर अवश्य प्रकट होंगे।

वैसे सदाचार का पूरा आधार सुविचारों पर ही है। दुनिया की वास्तविक उन्नति करने वाली एकमेव शक्ति सुविचार हैं। ऐसा एक प्रकृत्ति–प्रदत्त नियम है कि सृष्टि में जहाँ कहीं हिंसा, झूठ, अचौर्य आदि आचार दृष्टिगोचर होते हैं वहाँ पहले कुविचारों का बोलबाला होना चाहिए।

सुविचारों के बल पर मानव उत्तमोत्तम कार्य संपन्न करने में शक्तिमान सिद्ध होता है। यदि सदाचार में यकायक प्रवेश न भी हो तो हिम्मत नहीं हारनी चाहिए। बल्कि साहस से काम लेना चाहिए और निरंतर सुविचारों का प्रवाह गतिमान करने के प्रयत्न करते रहना चाहिए। फलतः सुविचारों की भावना का बल एकत्रित होते ही सदाचार अपनेआप काया तथा इंद्रियों के द्वारा प्रकट होता है।

मन को अनावश्यक कुत्सित विचारों के गहरे गर्त से बाहर निकाल, सदैव सुविचारों का चिंतन करते रहना चाहिए। जिस तरह समुद्र में एक लहर दूसरी लहर को उत्पन्न करने में समर्थ होती है ठीक उसी तरह मन में जिस जोर के साथ एक सुविचार प्रकट होता है उसी शक्ति से अन्य सुविचार को जन्म देने में समर्थ होता है।

For Private and Personal Use Only

वैसे देखा जाय तो सुविचार के बजाय कुविचार में विशेष बल होता है। और वह सुविचार को परास्त करने सर्वस्वी शक्तिमान होता है। अतः यदि एक बार कु–विचारों को नेस्तनाबूद कर दें तो मन में जो भी संस्कार सुषुप्तावस्था में विद्यमान होते हैं, वे सुविचारों की संगति अथवा सम्बन्धित कारण प्राप्त हो जाने की वजह से पुनः जागृत–सजीवन हो जाते हैं। अतः मन में धर्म सम्बन्धित विचारों को हर क्षण हर पल अहर्निश दोहरा कर मोह एवं कुविचारों के संस्कारों को जडमूल से उखाड फेंकने चाहिए।

मन को प्रायः शुभ व शुद्ध विचारों में पिरोये रखने से वह दानव की तरह उत्पात मचाने में समर्थ नहीं होता।

मन–सागर में विचारों की जो–जो तरंगे उछल कूद कर रही हों, उनके प्रति उपेक्षा भाव रखना चाहिए और कुविचारों को उठते ही कुचलना चाहिए।

मन ही मन एक घंटे तक किये गये भावनायुक्त शुभ विचार की जितनी कींमत है, उसकी बराबरी करने में कोई अनुष्ठान भी समर्थ नहीं होता। इस तरह संभव है शुभ विचारों की भावना का फल यकायक दृष्टिपथ में न आये। लेकिन इससे उक्त भावना से कदापि दूर नहीं जाना चाहिए।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२०. दीप जलाओ मन–मन्दिर में

एक कहता है, लेकिन कुछ करता नहीं। जबकि दूसरा जैसा कहता है वैसा आचरण करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता है। इसमें कहनेवाला और तदनुसार आचरण करनेवाला उत्तम है।
–श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

सुरत
दिनांक : ५–२–१९१२

यदि अन्यजनों को स्व–विचारवाले बनाने हों तो सर्वप्रथम हमें सुविचारों के अनुसार आचरण करना चाहिए। मानव खुद जिस आचार व विचारों में जितना दृढ/संकल्पशील होता है, उतने ही प्रमाण में वह अन्य लोगों को प्रभावित करने में शक्तिमान होता है। जो मानव कथनी व करनी में एक होता है, दूसरों पर उसकी वाणी का असर भली–भाँति होता है; लोग उसके शब्द को टाल नहीं सकते।

दूसरों के साथ जिन सद्गुणों के सम्बन्ध में चर्चा–विचारणा करनी हों, सर्वप्रथम उन्हें प्राप्त करने का हमें प्रयत्न करना चाहिए। कारण अमुक सद्गुणधारी मनुष्य बिना कुछ कहे (बोले) ही दूसरों को प्रभावित कर सकता है।

जगत् में कथनी के बजाय करनी निस्संदेह उत्तम तथ्य है। आचार–विचार में उच्चावस्था प्राप्त व्यक्ति के सान्निध्य में जाते ही लोगों के विचार में पर्याप्त मात्रा में परिवर्तन आ जाता है। वैसे ही उत्तम योगियों की शरण ग्रहण करने पर इस तत्त्व का बखूबी अनुभव होता है।

एक कहता है, लेकिन कुछ करता नहीं। जबकि दूसरा जैसा कहता है वैसा आचरण करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। उसमें कहनेवाला व तदनुसार आचरण करनेवाला उत्तम है।

संभव है कि हम जिनागम के अनुसार कदाचित आचरण न कर सकें तो इसे एक प्रकार का हमारा प्रमाद ही समझना चाहिए। किंतु उत्सूत्र का उच्चारण कर दुर्गति में जाने जैसा कदापि नहीं करना चाहिए और जिनागमों के कथनानुसार चलने–

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जीवन व्यतित करने की कोशिश करनी चाहिए। संभव है हम उसके अनुसार चलने में असमर्थ हों, फिर भी मन में सदाचार की भावना सतत जागृत रखनी चाहिए।

हमारे पास अल्प हो और बाहरी दुनिया में अधिक होने का दिखावा वाणी आदि के माध्यम से हरगिज न करें। कारण जो लोग प्रमाणिकतापूर्वक प्रवृत्ति करते हैं। उनके वाणी व वचन का प्रभाव दूसरों पर अचूक पडता है।

जो अपना कार्य सुधारने में समर्थ है, निःसंदेह वह अन्यजनों का सुधारने में समर्थ बन सकता है। फलस्वरूप सर्व प्रथम हमें अपनी शक्तियाँ प्रकटित करनी चाहिए तब कहीं दूसरों की शक्तियों को प्रकटित करने के लिए यत्न करना चाहिए। ठीक वैसे ही स्वयं का श्रेय करने का यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिए। साथ ही साथ दूसरे लोगों का श्रेय करने हेतु सदैव यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिए।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२१. अभयदान– सर्वोत्तमदान

जिस धर्म में दया नहीं है, उसे धर्म की संज्ञा देना सरासर गलत है। दया रूपी नदी–तट पर हमेशा धर्म रूपी अंकुर प्रस्फुटित होता है।
–श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

सुरत
दिनांक : ६–२–१९१२

मानव द्रव्य अभयदान द्वारा तीर्थंकर पद प्राप्त करता है। मौत के मुख में जाते प्राणियों को बचाने से महान लाभ प्राप्त होता है। जो दूसरों को अभयदान देता है, निस्संदेह वह निज आत्मा को निर्भय बनाता है।

अभयदान देने से अभय प्राप्त हो सकता है, इसमें शंका के लिए कोई स्थान ही नहीं है। स्वयं को यदि कोई अभय प्रदान करता है तो हमें जितना आनन्द मिलता है। ठीक उतना ही आनन्द अन्य जीवों को अभयदान देने से प्राप्त होता है।

जो अभयदान देते हैं, निस्संदेह उन्हें तीन लोक का ऐश्वर्य प्राप्त होता है। अभयदान देनेवाले अपने पाप कर्मों का क्षय करते हैं और अनन्य पुण्य का उपार्जन करते हैं।

प्राचीनकालीन आर्यावर्त में सर्वत्र दया का बोलबाला था...दया का एकछत्र राज्य था। प्रायः पशु–पक्षियों की प्राण–रक्षा करने हेतु निरंतर प्रयत्न करने चाहिए। आजकल सरेआम जीवहिंसा हो रही है, असंख्य प्राणियों का वध होता है तो कई पशु मारे भूख के मर जाते हैं। ऐसे जीवों को कई दयाभक्त अभयदान देने का प्रयत्न करते हैं।

जगत् में सर्वत्र दया के विचार जोर–शोर से फैल जाने से अभयदान देनेवाले लोगों की संख्या में आशातीत वृद्धि अवश्य होगी। ठीक वैसे ही आज के युग में अभयदान–माहात्मय समझानेवाले सच्चे उपदेशक व ऐसे साहित्य की अत्यंत आवश्यकता है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जिस धर्म में दया नहीं है, उसे धर्म की संज्ञा देना सरासर गलत है। दया रूपी नदी–तट पर हमेशा धर्म रूपी अंकुर प्रस्फुटित होते हैं।

उत्तम मनुष्य अभयदान देना अपना आद्य कर्त्तव्य समझते हैं। अरे, इग्लैंड व अमरिका जैसे पाश्चात्य राष्ट्रों में भी दयातत्त्व का प्रकाश दिन ब दिन प्रज्वलित होने लगा है। अभयदान देनेवाले जीव इस भव में और परभव में हमेशा सुखी होते हैं।

दान के अनेक प्रकार में अभयदान का क्रमांक प्रथम हैं। अभयदान देनेवालों को किसी भी तरह के क्षणिक फल की अपेक्षा किये बिना निरंतर अपनी प्रवृत्ति जारी रखनी चाहिए।

इतिहास साक्षी है कि संप्रति, अशोक व कुमारपाल सदृश राजा–महाराजाओं ने पशु–पक्षियों के लिए पिंजरापोलों का निर्माण कर उत्तम कल्पवृक्ष का बीजारोपण किया था। वस्तुतः दया यह एक सार्वजनिक धर्म है। अतः सभी धर्म के मतावलम्बियों को दया–धर्म का प्रचार प्रसार करने के यथेष्ट प्रयत्न करने चाहिए।

राज्य में शांति व सुख–चैन का वातावरण होता है तब हर कहीं दया–तत्त्व का प्रकाश फैलता जाता है। संसार में ज्यों–ज्यों ज्ञान का प्रचार बढता जाएगा और दुनिया के लोगों की रुचि धर्म के प्रति अधिकाधिक प्रमाण में बढ़ती जाएगी त्यों–त्यों उनकी दृष्टि समक्ष दया की देवी साकार होगी। अभयदान के प्रचारक श्रेष्ठ गति व उत्कृष्ट सुख प्राप्त किये बिना नहीं रहते।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२२. सद्गुरु के प्रति प्रशस्त राग

आधुनिक समय में धर्म स्नेह की अत्यंत आवश्यकता है। कारण वीतराग अवस्थायों ही एकदम प्राप्त नहीं होती।
—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

सुरत
दिनांक : ८–२–१९१२

आधुनिक समय में धर्म स्नेह की अत्यंत आवश्यकता है। कारण वीतराग अवस्था यों ही एकदम प्राप्त नहीं होती।

धर्म स्नेह के सोपान पर कदम रखते ही धर्माचरण करने की रुचि प्रतिदिन वृद्धिगत होती है। धर्म–प्राप्ति निमित्त धर्मीजनों पर स्नेह करते करते वीतराग के अंतःप्रदेश में उतर (प्रवेश कर) सकते है।

धार्मिक–प्रवृत्ति के मनुष्य को निहार, जिसके हृदय में स्नेहभाव की वृद्धि नहीं होती अथवा प्रेमभाव जागृत नहीं होता, ऐसा मनुष्य धर्म के श्रेष्ट सोपानों पर कदम रखने का अधिकारी कदापि नहीं बन सकता। संसारी सगे सम्बन्धी व रिश्तेदारों के प्रति जो प्रेम होता है यदि उससे अधिक प्रेम जिसके मन में अपने गुरुदेव के प्रति नहीं है; निस्संदेह वह धर्म के उच्च (श्रेष्ट) मार्ग को प्राप्त कर नहीं सकता।

यदि इस संसार में राग–अनुराग किये बिना रह नहीं सकते तो अपने गुरुदेव के प्रति राग–अनुराग की भावना में रत रहो। कारण सद्गुरू के प्रति राग–अनुराग रखने से अन्य वस्तुओं के प्रति रही राग–अनुराग की भावना क्षय होती है और कालान्तर से धर्म उद्दिष्टों के प्रति वही भावना जागृत होती है और अंत में अंतर में स्थिरता धारण करने से अप्रमत्तावस्था की प्राप्ति होती है। ठीक वैसे ही आत्मा केवलज्ञान के योग्य ऐसे शुक्ल ध्यान का ध्याता बन, दसवें गुणस्थानक में राग–अनुराग का सर्वस्वी क्षय करता है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अप्रशस्य राग को प्रशस्य राग में परिवर्तित करना चाहिए। सद्गुरु मुनिराज के प्रति प्रशस्य राग धारण करने से अप्रशस्य राग के परिणाम क्षय होते हैं। फलस्वरूप ज्यों–ज्यों सद्गुरु के प्रति हमारे मन में अधिकाधिक मात्रा में प्रेम भाव पैदा होता है त्यों–त्यों आत्मा धर्म–मार्ग पर अधिकाधिक उच्च (श्रेष्ठ) बनती जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि सद्गुरु के प्रति रहे राग–अनुराग से आत्मा में असंख्य गुणों का प्रादुर्भाव होता है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२३. साधु–सेवा–सुख सम्पदा

साधु की संगति एवं सेवा से वीतराग प्रभु के मन्दिर में सहज प्रवेश मिलता है। साधु परमार्थ के लिए देह धारण करते हैं अतः वे कल्पतरु चिंतामणि और कामधेनु से भी बढ़कर है।
–श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

सायण
दिनांक : १–२–१९१२

साधु–संतों की सेवा करने से आत्मा की ऊर्ध्वगति होती है। साधु की सेवा करने से उनके अनन्य गुणों का लाभ मिलता है। उनकी संगति से नाना प्रकार के पापाचरण दूर होते हैं। साथ ही उनकी सेवा से इष्ट फल सिद्धि होती है।

सुसाधु की निरंतर सेवा करनी चाहिए। साधुवर्ग की प्रेमभाव से सेवा करते समय कभी निरुसाहित नहीं होना चाहिए। मन में अमुक प्रकार का क्षणिक स्वार्थ धारण कर साधु की सेवा करने के बजाय प्रायः निष्काम भाव से सेवा करने से कई गुना अधिक लाभ मिलता है।

दुष्ट–दुर्जन लोगों से साधुओं की रक्षा करने से साधुवर्ग की प्रगति होती है। आबादी, पात्र, आहार–पानी, पुस्तकादि दान के माध्यम से भी साधु की सेवा कर सकते है।

यदि कोई साधु कुसाधु बन जाय तो इससे सुसाधु के प्रति रही श्रद्धा का त्याग नहीं करना चाहिए। महाराज श्रेणिक व श्रीकृष्ण ने साधुवर्ग की अनन्य भक्ति–सेवा की थी। सच्चे मन से यदि साधु की सेवा की जाय तो वह कभी निष्फल नहीं जाती। अहर्निश साधु–सेवा करते रहने से असंख्य जीव पापकर्मों का क्षय कर मोक्ष–पद के अधिकारी बने हैं, बनते हैं और बनेंगे।

विश्व में गंगा नदी, कल्पवृक्ष एवम् चिंतामणि रत्न आदि से भी अधिक महिमा साधु की है। अतः साधु की सविधि श्रद्धाभाव से सेवा करनी चाहिए।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

साधु की सेवा सुश्रूषा करने वाले तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन करते हैं। सच्चे दिलोदिमाग से उनकी सेवा–टहल किये बिना उनके मन को जीतना असंभव है। जबकि उनकी सच्ची सेवा–सुश्रूषा से आशीर्वाद के पात्र बनते हैं।

साधु की संगति से आत्मा उच्च गति प्राप्त करके ही रहती है। निष्ठापूर्वक उनकी सेवा करते हुए परमात्मपद प्राप्त कर सकते है।

निस्संदेह वे लोग धन्य हैं जिनका मन साधुओं के दर्शन मात्र से प्रफुल्लित होता है।

वास्तव में साधु–सेवा यह परम सुख का एकमेव कारण है। जिसमें विवेकदृष्टि है वह साधु–संतों का मान–सम्मान व स्वागत किये बिना नहीं रहता।

साधु परमार्थ के लिए देह धारण करते हैं। सकल जनों के पाप धोकर अपना रूप प्रदान करनेवाले साधुवर्ग को कोटिशः प्रणाम!

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२४. शुभ–ध्यान

ध्याता, ध्येय एवं ध्यान की एकता
जितने समय तक कायम रहती है,
उतनी अवधि तक हमारा चित किसी
अन्य वस्तु में नहीं लगता। अशुभ–
ध्यान को टालने के लिए शुभ–ध्यान
का सेवन करना चाहिए।
–श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

कोसंबा
दिनांक : १०–२–१९१२

आत्मा के छट्ठे स्थानक का प्रदीर्घकाल पर्यंत चिंतन करने से आत्मज्ञान का प्रकाश वृद्धिगत होता है। जैसे जैसे छट्ठे स्थानक का अधिकाधिक मनन किया जाता है वैसे वैसे आत्म–तत्त्व सम्बन्धित विशेष जानकारी हासिल होती है। ज्ञान प्राप्त होता है।

आत्मा की शुद्ध–विशुद्ध परिणति प्रकटित हो, निरंतर ऐसी विचारश्रेणी का अवलम्बन करना चाहिए। आत्मा के छट्ठे स्थानक के विषय में अनुभव–ज्ञान प्राप्त कर आत्मा के स्वभाव में अहर्निश रमण करना चाहिए।

एक ही आत्म–तत्त्व का यदि लगातार तीन रात्रि तक एकाग्र चित ध्यान करने से आत्मा के अनुभव की झांकी–प्रतीति होती है। मन में उत्पन्न होते राग द्वेषात्मक संकल्प–विकल्पों को दबाने तथा समभाव विचार श्रेणी का अवलम्बन कर आत्मा–ध्यान में निमग्न होने पर अमुक अंश में आत्म का सहज बल प्रकट होता जाता है।

आत्मा के अनेकानेक गुणों में से किसी एक विशेष गुण का प्रदीर्घ काल तक चिंतन करना चाहिए और ऐसा करने में अवरोध रूप आडे आते मोह–विक्षेपों को दूर करने–हटाने का प्रायः प्रयत्न करना चाहिए।

परमात्मा के साथ आत्म का एक्य साधने तथा परभव का भान भूल जाने पर राग–द्वेष की परिणति का अवरोध होता है। ध्याता, ध्येय एवं ध्यान की एकता जितने समय तक कायम रहती है उतनी अवधि तक हमारा चित्त किसी अन्य वस्तु में नहीं लगता–स्थिर नहीं होता। ध्यान धारणा के समय परमात्मा के साथ आत्मा का ऐक्य

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

साधने से परम सुख का आस्वाद ले सकते है।

पिंडस्थ, पदस्थ व रूपस्थादि सालम्बन ध्यान के तीन प्रकार हैं। इन तीनों का स्वरूप जान लेने के पश्चात् इनके (तीन ध्यान) द्वारा आत्मा का ध्यान कर सकते हैं। इस तरह सबसे पहले सालम्बन ध्यान की भूमिका स्थिर–निश्चित करने के उपरांत निरालम्बन ध्यान में प्रवेश कर सकते हैं।

सालम्बन ध्यान को सविकल्प ध्यान भी कहा जाता है और रूपातीत ध्यान को निर्विकल्प ध्यान। इनमें से सविकल्प ध्यान यदि कारण है तो निर्विकल्प ध्यान कार्य है।

शुभ एवं अशुभ विचारों के अनुसार मानव शुभा–शुभ ध्यान में रमण करता है। यदि अशुभ ध्यान को टालना हो–मार्ग से हटाना हो तो उसका एक ही रामबाण उपाय है और वह है अधिकाधिक मात्रा में शुभ ध्यान का सेवन करते रहना।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२५. ज्ञान और क्रिया

यह स्वाभाविक नियम है कि पहले ज्ञान
और बाद में क्रिया। ज्ञान के बल पर
ज्ञानीजन द्रव्य, क्षेत्र व कालादि प्रसंग पर
नये कार्य कर सकते हैं।
—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

झघडिया
दिनांक : १२—२—१९१२

नदी से नया प्रवाह निकालना सर्वस्वी मेघ के हाथ में है। वैसे कोई नदी किसी अन्य नदी से प्रवाह निकालने में शक्तिमान नहीं होती। उसी तरह विचार रूपी मेघ से आचार रूपी नदी का प्रवाह जन्म ले सकता है।

मेघ नदी के आकार—प्रकार व स्वरूप में परिवर्तन करने में शक्तिमान होता है। आचारों का वास्तविक आधार—केन्द्र विचार ही है। दुनिया भर में क्रिया के जितने आचार दृष्टिगोचर होते हैं। उनके सम्बन्ध में ऐसे अनुभव प्रमाण बताया जाता है कि इससे पूर्व उक्त आचारों को उत्पन्न करनेवाले अमुक—अमुक विचार अवश्य हुए थे। यह स्वभाविक नियम है कि पहले ज्ञान और बाद में क्रिया। इससे ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि मानव के अमुक प्रकार के आचारों के फलस्वरूप उसके मन म अमुक प्रकार के विचार अवश्य होंगे।

किसी विषय के सम्बन्ध में विचार करते—करते मगज थक जाए...श्रमित हो जाए उसके पूर्व ही अधिक विचार करना बंद कर देना चाहिए। कारण शारीरिक—क्रिया करते हुए मन को विचार करने में अधिक परिश्रम होता है। इस तरह दिन रात शारीरिक कष्ट करनेवालों के बनिस्बत ज्ञानाभ्यासियों को सर्वाधिक परिश्रम होता है।

जबकि मन की क्रिया करते मानसिक विचार की शुभ क्रिया परम्परा अधिकाधिक लाभ प्रदान करती है। उदाहरणार्थ यदि किसी का मन परिवर्तन किया जाय तो शीघ्र ही उसकी काया तथा वाणी के व्यापार में परिवर्तन होता है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जो जो शारीरिक–क्रियाएँ सम्पन्न होती है, उनके तथाकथित रहस्य भी मानसिक विचार शक्ति से प्राप्त किये जा सकते हैं। ज्ञान के बल पर ज्ञानीजन द्रव्य, क्षेत्र व कालादि प्रसंग पर नये कार्य कर सकते हैं।

बालजीव आत्मसाधक ज्ञानी की बाह्य क्रियाओं को देख कर उनका आदर कर सकते हैं क्योंकि आत्मार्थी ज्ञानी की बाह्यक्रियाएँ भी अमुक शुभ अध्यवसाय के उद्देश्य से मुक्त होती हैं। लेकिन बालजीव उक्त उद्देश्यों को अवगत–जानने में सफल नहीं हो सकते।

मानसिक विचारों के प्रवाह से शरीर व जगत् पर बहुत असर होता है। विचार–शक्ति के बल पर स्थूल में परिवर्तन कर सकते हैं। इसके सूक्ष्म रहस्य को वास्तव में तत्त्ववेत्ता ही भली–भाँति समझ सकते हैं।

आँख आदि अवयवों की चेष्टाओं पर से सहज अनुमान लग सकता है कि हमारे मन में अमुक प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ है। विचार–शक्ति द्वारा पुस्तक लेखन कर सकते है और पुस्तकादि के माध्यम से व्यक्ति के आचार–विचार में परिवर्तन कर सकते हैं।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२६. सहजानन्द की कुंजी—शुभ ध्यान

असार संसार में मानव—जीवन सदृश अमूल्य पाथेय पाकर मानव को मोक्ष मार्ग की ओर प्रयाण करना चाहिये। वैसे आत्मा के सहजानन्द गुणों की प्राप्ति हेतु आत्मिक गुणों का उपासक बनना आवश्यक है।
—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

करजण
दिनांक : १२—२—१९१२

मानव बिना किसी कारण राग—द्वेष निरंतर बढता रहे, ऐसी बातें कर अपने जीवन का अधिकांश समय व्यर्थ गँवाता है। वस्तुतः आर्तध्यान व रौद्रध्यान में वृद्धि हो, ऐसी बातें करते रहने से आत्मिक गुणों का आच्छादन होता है।

जो आत्मिक शक्ति साधने हेतु श्रमण बने हैं, उन्हें व्यर्थ ही निंदा कर अपना समय बेकार नहीं गँवाना चाहिए। बल्कि अपना आचरण पवित्र रख, अन्य लोगों को भी ऐसा करने की सीख देनी चाहिए।

भाव को प्रायः परवस्तु मान कर उपशम....इंद्रिय—निग्रह आदि भावों को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। जिन स्थानक पर अथवा जहाँ आश्रय लेने से मानसिक चंचलता दूर होती हो, ऐसे उपाय खोजने चाहिए। जिनकी संगति से दुर्गुण दूर और सद्‌गुण सेवन करने की भावना जागृत हों, प्रायः ऐसे लोगों की संगति करनी चाहिए।

श्रीमद् यशोविजयजी महाराज ने 'सो कहीए सो पूछीए, तामे धारीए रंग; या ते मिटे अबोधता, बोध रूपे रहे संग।' दोहे में कर्तव्य कार्य कहने तथा पूछने का सुंदर उपदेश दिया है।

असार संसार में मानव—जीवन सदृश अमूल्य पाथेय पाकर मानव को मोक्ष—मार्ग की ओर प्रयाण करना चाहिए।

प्रमाद को कभी बुलाने—न्यौता देने की आवश्यकता नहीं होती। बल्कि वह तो बिन बुलाये मेहमान की तरह आ जाता है। जबकि उपशमादि धर्म प्राप्त करने के लिए प्रायः कठोर श्रम—उद्यम करना पडता है। दुर्गुण तो राह चलते काँटे की तरह

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लिपट जाते हैं और सद्गुण अमूल्य रत्नों की तरह प्रयत्नों की पराकाष्ठा करने पर ही प्राप्त होते हैं।

जहाँ शोर–बकोर या हल्ला–गुल्ला हो, ऐसे धर्म के प्रति बालजीवों की रुचि होना सहज सरल बात है। लेकिन उपशमादि धर्म के प्रति बिना ज्ञान के हुए और प्रमाद को दूर किये बिना रुचि पैदा होना निहायत दुर्लभ बात है।

धर्म की चर्चा–चिंतन करने से ज्ञान, दर्शन व चारित्र–मार्ग की ओर प्रयाण–गति होती है। प्रायः ऐसे उपायों की योजना करनी चाहिए, जिससे आत्मानंद गुण की प्राप्ति सहज संभव है। वैसे आत्मा के सहजानंद गुणों की प्राप्ति हेतु आत्मिक गुणों का उपासक बनना आवश्यक है। इस तरह निरंतर प्रयत्नशील होने से आत्मा के स्वरूप में जब उसकी स्थिरता हो जाती है तब आनन्द प्रकटित हुए बिना नहीं रहता।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२७. शान्त सुधारस

आत्मा को परमात्मा के सम्मुख करना चाहिए। सूर्य के साथ सम्बन्धित कमल जिस तरह जल में निर्लेप होता है। ठीक उसी तरह परमात्मा की ओर स्थिर दृष्टि रखनेवाला आत्मा भी संसार रूपी जल में निर्लेप रह सकता है।
—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

करजण

भक्ति–सागर मे गोता लगाते रहने से परमात्म–गुणों के साथ पूर्णतया लीनता हो जाती है। ऐसे अवसर पर मानव को शांत सुधारस के स्वाद का कुछ (अस्पष्ट) आभास होता है।

आत्मा को परमात्मा के सम्मुख करना चाहिए। सूर्य के साथ सम्बन्धित कमल जिस तरह जल में निर्लेप...निर्दोष–निष्कलंक रह सकता है। ठीक उसी तरह परमात्मा की ओर स्थिर दृष्टि रखनेवाला आत्मा भी संसार रूपी जल में निर्लेप रह सकता है।

आत्मा का परमात्मा के साथ प्रेम–गठबंधन दृढ होते ही उसकी मलिनता दूर हो जाती है। वस्तुतः परमात्मा के प्रति रही अनन्य प्रीति आत्मा को सर्वश्रेष्ठ अवस्था पर पहुँचाने में समर्थ होती है।

परमात्मा के साथ पवित्र प्रेम से प्रचुर सम्बन्ध प्रस्थापित किये बिना मुक्ति–सोपान पर कदापि आरोहण नहीं होता। साथ ही परमात्मा के गुणों की भावना में आंकठ डूबी आत्मा अपने भीतर सत्तारूढ–स्थिर रहे गुणों को प्रकट कर दें इसमें आश्चर्य करने जैसी कोई बात ही नहीं है।

परमात्मा के साथ प्रायः शुद्ध प्रेम–भाव रख, अशुद्ध प्रेम को मिटा देना चाहिए। दुनिया के सभी जीवों के प्रति जब शुद्ध प्रेम विकस्वर होवे तब समझना चाहिए कि परमात्मा के साथ शुभ सम्बन्ध प्रस्थापित हुए हैं।

परमात्मा की भक्ति करनेवालों के दिलोदिमाग में निखिल विश्व के प्रति शुद्ध

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रेम की भावना हमेशा पैदा होनी चाहिए और सृष्टि के प्राणी मात्र मित्रवत् लगने चाहिए। परमात्मा की भावना में हमेशा इस कदर लीन–तल्लीन हो जाना चाहिए कि निज आत्मा ही परमात्मा स्वरूप प्रतीत होने लगे।

उपाधि व परमात्मा की भक्ति यह दोनों एक साथ नहीं हो सकते।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२८. व्यवहार और निश्चय नय

व्यवहार व निश्चय नय को स्वीकार किये बिना सम्यकत्व की प्राप्ति नहीं होती। व्यवहार कारण है और निश्चय कार्यभूत है। व्यवहार नय निर्मित कारण है, जब कि निश्चय नय उपादान कारण है।
—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

इटोला
दिनांक : १८–२–१९१२

व्यवहार व निश्चय नय को स्वीकार किये बिना सम्यकत्व की प्राप्ति नहीं होती।

सूर्य और चंद्र की भाँति पूरे ब्रह्माण्ड में व्यवहार व निश्चय नय भी सदा–सर्वदा विजयवंत हैं। व्यवहार कारण है और निश्चय कार्यभूत है। आत्मा के अध्यवसाय की शुद्धि में व्यवहार नय निमित्त कारण है। जो मनुष्य व्यवहार नय कथित धर्म का उत्थापन–खंडन करता है, वह निस्संदेह जैन शासन का उत्थापन करता है। निश्चय नय प्राप्त चेतना के शुभादि अध्यवसाय से पतित हुए प्रसन्नचंद राजर्षि की तरह व्यवहार नय आलम्बन प्रदान कर धर्म में पुनः स्थिर–दृढ करता है।

अशुभ व्यवहार से शुभ व्यवहार और शुभ व्यवहार से शुद्ध व्यवहार में प्रवृत्ति करने हेतु उपाय करने चाहिए। व्यवहार नय निमित्त कारण है, जब कि निश्चय नय उपादान कारण है। आत्मिक गुणों को प्रकट करने हेतु किसी भी निमित्त कारण स्वरूप व्यवहार का अवलम्बन किये बिना किसी का भी छूटकारा नहीं होता। गृहस्थावस्था में रहे तीर्थंकर भगवान भी निजात्मा के गुण प्रकट करने हेतु साधु–दीक्षा रूपी व्यवहार को स्वीकार करते हैं।

मन, वचन व काया के योग की गुप्ति करने हेतु जो भी बाह्य प्रयत्न किये जाते हैं, वह व्यवहार है। तेरहवें स्थानक पर पहुँचे तीर्थंकरदेव भी व्यवहार धर्म को चलाते हैं। केवलज्ञानी भगवान आहार–पानी का उपयोग करते हैं, उपदेश प्रदान करते हैं और तीर्थ की स्थापना करते हैं, यह सब व्यवहार है।

व्यवहार कथित जिन किन्हीं कार्यों में प्रवृत्त होना हो, उसके पूर्व उनके सम्बन्ध

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

में पूरा ज्ञान प्राप्त करने की अत्यंत आवश्यकता है। किन्हीं क्रियाओं के मूल रहस्यों को आत्मसात् कर अपनी क्षमता–काबिलियत अनुसार धार्मिक क्रियाएँ करनी चाहिए।

व्यवहार क्रिया की साधना का मूल रहस्य आत्मा के परिणाम की शुद्धि करना ही है। यह बात कदापि नहीं भूलनी चाहिए। प्रायः निश्चय–दृष्टि का आधार लेकर व्यवहार की आराधना करनी चाहिए। जिस कारणवश कार्य की अमुक मात्रा में सिद्धि न हो, उसे अकारण कहा जाता है।

मानसिक शुद्धि द्वारा आत्मिक गुणों का अविर्भाव हों तथा मोह की शक्ति क्षीण होवे, ऐसी प्रवृत्तियाँ करना यह सर्वस्वी व्यवहार धर्म हैं।

किसी भी लिंग में रहे मानव की आत्मा ज्ञान, दर्शन व चारित्रादि गुणों में

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२९. अनेकान्त दृष्टि

नय के पारस्परिक सापेक्षता से
प्रत्येक वस्तु के स्वरूप को जानना...
पहचानना चाहिए। धर्माचरण करते
समय भी नय की अपेक्षा व स्वाधिकार
से भेद पड़ते है। अमुक नय उचित धर्म
की क्रिया या रुचि होने से दूसरे नय
उचित धर्म क्रिया अथवा रुचि का
खंडन नहीं होता।
—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

पादरा
दिनांक : २१—२—१९१२

रमणता करने से मोक्षगामी बनती है।

हे आत्मन ! बाह्य जो सर्व वस्तुएँ विद्यमान हैं वह तुम नहीं हो और ना ही उनमें इष्टत्व है। अपने मन से की गयी इष्ट—अनिष्ट की कल्पना मात्र से बाह्य वस्तुओं के जाल में कभी फँसना नहीं चाहिए...उनके प्रति आसक्ति—लगाव नहीं रखना चाहिए। बल्कि द्रव्यानुयोग को आत्मसात् कर हे चेतन ! तुम्हें चरणकरणानुयोग की धर्म—प्रवृत्ति अपनी क्षमता के अनुसार करनी चाहिए।

हे आत्मन ! तुम्हें अपने शुद्ध सत्तागत धर्म को उजागर कर उसमें स्थिर उपयोग धारण करने की आवश्यकता है। ठीक उसी तरह आत्मा में रमणता कर अशुद्ध धर्मकरण को शुद्ध धर्मकरण के रूप में प्रवर्तित करना चाहिए।

हे आत्मन् ! तुम्हें मन, वचन, व काया की चंचलता दूर कर आत्मवीर्य की स्थिरता करनी चाहिए। इसका सदैव ध्यान (उपयोग) रखना चाहिए कि वैसे ही अपने अधिकार धर्म द्वारा ऊर्ध्व व अधो (नीचे का) धर्म का कदापि खंडन नहीं होना चाहिए और ऊपरी तौर पर नय कथित धर्म की अपेक्षा से अधो—अधो नय कथित धर्म की अशुद्धतरत्व व अशुद्धतमत्व को परिलक्षित कर सापेक्ष नयवाद धर्म प्ररूपन का परित्याग कर एकांतिक उपदेश नहीं देना चाहिए।

वास्तव में नय अमुक अपेक्षा से विचारवाली एक वैचारिक दृष्टि है इसलिए उनको नयाभास के रूप में ग्रहण करना नहीं चाहिए। नीचे की अपेक्षा ऊपर के

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गुणस्थानक या उपरिस्थ नय शुद्ध कहे जाते हैं। लेकिन यदि नीचे की अपेक्षा न लेने में न आवें तो किस अपेक्षा से शुद्ध कहे जाय?

नय के परस्परिक सापेक्षता से प्रत्येक वस्तु के स्वरूप को जानना...पहचानना चाहिए। धर्माचरण करते समय भी नय की अपेक्षा व स्वाधिकार से भेद पडते हैं। अमुक नय कथित धर्म की क्रिया या रुचि होने से दूसरे नय कथित धर्मक्रिया अथवा रुचि का खंडन नहीं होता।

अतः हे चेतन! नय के सापेक्ष वर्तुल में समाहित ऐसे सर्व धर्म के स्वरूप रूपी जैन धर्म की प्रमादावस्था त्याग कर अप्रमत योगपूर्वक आराधना करो। कारण तुम्हारे में अस्ति रूपी रहे ज्ञानादि अन्यवय धर्म की आराधना करने पर भी नास्ति रुची स्थिर व्यतिरेक धर्म की सहज आराधना होती ही है

हे चेतन! शुद्धोपयोग समाधि में तुम निरंतर केलि–क्रीडा करते रहो। राग व

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

३०. आनन्दानुभूति

दुर्गुणों का नाश करने हेतु सद्गुणों का बार-बार चिंतन, मनन व ध्यान करना चाहिए। जहाँ-तहाँ सिर्फ दुर्गुणों को ही खोजना या उसके प्रति आकृष्ट होने के बजाय जहाँ-तहाँ सद्गुणों को ही देखना और उसका ध्यान रखना, यह अन्य कार्यों अनंतगुना उत्तम कार्य है।
-श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

पादरा
दिनांक : २२-२-१९१२

द्वेष की अशुद्ध परिणति का सर्वरूपी परित्याग कर स्वभाव में सदैव लीन....तल्लीन रहो।

शुद्ध परिणति में प्रायः ज्ञान, दर्शन व चारित्रादि का समावेश होता है। दर्शन ज्ञान की सहायता करता है और चारित्र स्वयं भी ज्ञान का सहायक है। अर्थात् ज्ञान के कारण चारित्र की शुद्धि होती है। वैसे ही चारित्र से भी ज्ञान की शुद्धि होती है।

आत्मा के गुणों में ही उपयोग होने से संवर भाव की प्राप्ति होती है। विभावावस्था में रूपांतर हुए आत्मवीर्य को स्वभावावस्था में पल-प्रतिपल रूपांतरित करना चाहिए। आत्मा के उपयोग द्वारा अशुद्ध भाव को शुद्ध भाव के रूप में रूपांतरित कर सकते हैं। शुद्धोपयोग में रमणता करने मात्र से ही अशुद्ध भाव नष्ट हो जाते हैं।

दुर्गुणों का नाश करने हेतु सद्गुणों का बार-बार चिंतन-मनन व ध्यान करना चाहिए। जहाँ-तहाँ दुर्गुणों को खोजना अथवा दुर्गुणों के प्रति आकृष्ट होने के बजाय जहाँ-तहाँ सद्गुणों को ही देखना और उसका ध्यान रखना, यह अन्य कार्यों से अनंतगुना उत्तम कार्य है।

दुर्गुणों के कारण आत्मा में रहे सद्गुणों का आच्छादन होता हैं। फलस्वरूप दुर्गुणों को ही सद्गुणों में परिवर्तित कर देना चाहिए।

हे आत्मन्! सद्गुणों की प्राप्ति हेतु तुम पल-प्रतिपल निरंतर प्रयत्नशील रह!

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इंद्रियादि विषयों को ग्रहण किये बिना हृदय में जिस आनन्द की तरंग उठती है, उसे प्राप्त करने हेतु प्रयत्न करना चाहिए।

संभव है, मन को जड़ पदार्थ सुखप्रद नहीं लगें और ना ही दुःखप्रद लगें और वह (मन) आत्मा के साथ जुडा हुआ हो, उस समय जो आनन्दानुभूति होती है वास्तव में वही आत्मिक सुख होता है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

३१. प्रेमा भक्ति

कई लोग भवितव्यता पर आधार
रख कर कोई काम नहीं करते।
परंतु यह प्रवृत्ति ठीक नहीं है।
सतत उद्यम करने के उपरांत
भी जब कार्य- सिद्धि नहीं होती,
तभी चिंतन करना चाहिए कि,
जो होना सो हो गया।
-श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

पादरा
दिनांक : २३-२-१९१२

कई लोग भक्तिव्यता (भाग्य) पर आधार रख कर काम नहीं करते। परन्तु यह प्रवृत्ति ठीक नहीं है। सतत उद्यम करने के उपरांत भी जब कार्य-सिद्धि नहीं होती। तभी वीचार करना चाहिए कि जो होना था सो हो गया।

छद्मस्थ लोगों के लिए केवल ज्ञान नहीं है। अतः उन्हें निरंतर उद्यमशील रहना चाहिए। पंच समवाय में किसी अपेक्षावंश उद्यम की प्रधानता है। मोक्ष-प्राप्ति हेतु भी ज्ञान, दर्शन व चारित्र के उद्यम की आवश्यकता है।

प्रायः प्रीति, भक्ति, वचन एवं असंग अनुष्ठान द्वारा परमात्म-तत्त्व की आराधना करनी चाहिए। अशुद्ध प्रीति को शुद्ध प्रीति में परिवर्तित कर आत्मा की परिणति श्रेष्ठ करनी चाहिए।

अशुद्ध प्रीति से हमेशा संसार की उत्पत्ति होती है। और शुद्ध प्रीति से शुद्धात्म धर्म-सृष्टि की रचना होती है। अशुद्ध प्रीति से नानाविध-उपाधियों में वृद्धि होती है और मानसिक चंचलता बढने से आत्मवीर्य की चंचलता भी बढ़ती है।

शुद्ध प्रीति अनुष्ठान से उपाधियों का नाश होता है और मानसिक चंचलता दूर होती है। साथ ही आत्मवीर्य की स्थिकता के उद्देश्यों की प्राप्ति होती है। वैसे ही उसके कारण अपनी आत्मा सुधरती है और उसके सम्पर्क में आनेवाले अन्यात्मा भी सुधरते हैं। उसी तरह उसकी वजह से सात्विक अवस्था उत्पन्न होती है। उससे रजोगुण व तमोगुण का नाश कर सकते हैं। उसी तरह विनय व सम्मानपूर्वक भक्ति अनुष्ठान द्वारा धर्म की आराधना करनी चाहिए।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

३२. शुभ अध्यवसाय

शुभ या अशुभ कर्म अथवा देहादि
की मूल जड़ शुभाशुभ अध्यवसाय हैं,
अतः अशुभ अध्यवसायों का परित्याग
कर नित्य शुभ अध्यवसाय करने
चाहिए।
—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

पादरा
दिनांक : २८—२—१९१२

आत्मा के गुणों में सदैव रमणता करने से उसका जो वीर्य परभव में परिणमित हुआ है, वह टल कर...अपने प्रवाह से दूर होकर अपने ही शुद्ध भाव में परिवर्तित होता है। आत्मस्वरूप मे रंगने का समरस होने का वीर्योल्लास ज्यों—ज्यों वृद्धिगत होता है त्यों—त्यों आत्मवीर्य की निरंतर वृद्धि होती है और कर्म—प्रकृति का अपवर्तन होता है व शुभ कार्य का उद्वर्तन। वैसे ही अशुभ कर्म का भी शुभ कर्म में संक्रमण होता है।

आत्मा के असंख्य प्रदेशों में व्याप्त ज्ञानादि गुणों का एकस्थिरोपयोगपूर्वक ध्यान—धारणा करने से आत्मा शीघ्र उज्जवल बनती है। उसी प्रकार परभाव में परिवर्तित आत्मवीर्य स्वभाव परिणति के रूप में परिणत होता है।

आत्मा के स्वरूप का विचार करते समय ध्याता, ध्यान व ध्येय की एकता के स्थिर होने पर उसमें रत्नत्रयी का अंतर्भाव होता है। आत्मा का शुभ परिणाम रूप शुभ अध्यवसाय स्वंय अशुभ पुद्गल रूपी पाप समूह के साथ जुड कर पाप पुद्गलों को ग्रहण कर आत्मप्रदेश के साथ क्षीरनीर वृत्ति से परिणत करता है। अर्थात् पापदल को दूर कर देता है।

अशुद्ध अध्यवसाय एवं संकल्प करने से स्व—पर जीवों का नुकसान कर सकते हैं। अतः अशुभ अध्यवसायों का परित्याग कर नित्य शुभ अध्यवसाय करने चाहिए। शुभाशुभ अध्यवसाय में वस्तुतः आत्म—वीर्य शुभ—अशुभ रूप में परिवर्तित

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हुआ होता है। जबकि शुभ अध्यवसाय में वास्तव में आत्म–वीर्य शुद्ध–विशुद्ध रूप में परिवर्तित होता है। शुभ या अशुभ कर्म अथवा देहादि की मूल जड शुभाशुभ अध्यवसाय हैं।

प्रायः अशुभ में से शुभ व शुभ में से शुद्ध में प्रविष्ट होने का प्रयत्न करना चाहिए। ठीक उसी तरह यदि किसी को शुभ अध्यवसाय होते हों तो उसमें विघ्न नहीं डाले। शुभ अध्यवसाय के बनिस्बत भाव संवर रूप शुद्ध अध्यवसाय कई गुना उत्तम व श्रेष्ठ हैं।

आत्मा को सम्यक् मान आत्मा के स्वरूप में परिवर्तित करने से परभाव में परिणत अनंत वीर्य भी पुद्गल भाव से विमुक्त हो, अपने शुद्ध स्वरूप में परिणत होता है। शुभ और अशुभ संकल्प–बल से शुभाशुभादि वस्तु पर वस्तु संयोगी वीर्य होता है तथा आत्मा के शुद्ध–विशुद्ध स्वरूप में क्रीडा करने से उस से जुडे कर्म दूर होते हैं। फसतः आत्मा का शुद्ध पर्याय उत्पन्न होता है। और उसी शुद्ध पर्याय को मोक्ष रूप कहा जाता है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

३३. सर्वोत्तम जगत् सेवा

शुद्ध प्रेम के बल पर जो गुण जिस अंश में उजागर किये हैं उसी अनुपात में उन सद्गुणों का दूसरों पर प्रभाव डाल सकते हैं।
—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

पादरा
दिनांक : २—३—१९९३

आत्मा के सद्गुणों को विकस्वर किये बिना कभी महान् नहीं हो सकते। अतः उत्तम पुरुषों के जीवन चरित्र पढ़ कर आत्मोन्नति का मार्ग ग्रहण करना चाहिए।

सद्गुणों का संचय करने से दुर्गुणों में परिणत शक्ति निज का अशुद्धत्त्व परित्याग कर सद्गुणों में परिवर्तित होकर शुद्धता में परिणित होती है। अतः तीर्थंकर देवों के जीवन चरित्र का पठन कर सद्गुण निहित प्रवृत्ति करनी चाहिए।

चूंकि शुद्ध प्रेम का महासागर प्रकटित किये बिना आत्मा को लगा पाप—कीच हटा नहीं सकते...उसे धो नहीं सकते। जीवन में एक भी दुर्गुण का पोषण...प्रादुर्भाव न हो, साथ ही सद्गुण व उसके उद्देश्यों में ही अहर्निश प्रवृत्ति होनी चाहिए ऐसा एवं सृष्टि के सभी जीवों को भूल सत्तान्तर्गत परमात्म बुद्धि से अवलोकन करने की शक्ति एक मात्र शुद्ध प्रेम ही अर्पित करता है।

बिना किसी प्रकार से स्वार्थादि दोष के निजात्मा की भाँति सर्व आत्माओं को देखने वाला शुद्ध प्रेमोदधि में स्नान कर परम समता—रस की शीतलता प्राप्त करता है।

शुद्धता के प्रेमी भूल कर भी कभी संकुचित वृत्ति से धर्म—मार्ग का प्ररुपन नहीं कर सकते। सभी जीवों को स्व—आत्मा की तरह मान, उनकी रक्षादि करने में भक्ति करना, निहायत यह सर्वोत्तम जगत् सेवा है।

शुद्ध प्रेम के बल पर जो गुण जिस अंश में उधागर किये हैं। उसी अनुपात में उक्त सद्गुणों का दूसरों पर प्रभाव डाल सकते हैं। किसी भी प्रकार की शक्ति

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

एवं रुचि से भिन्न लौकिक या धार्मिक रुढी के वशीभूत हो कर आत्मा को भेड़चाल वृत्ति में आबध्द कर ऊपर के सोपान पर चढ़ नहीं सकते।

अतः हे आत्मन्! निष्कट भाव से तुम अपना मार्ग ग्रहण कर ले और इस बात का दृढ विश्वास रख कि सद्गुणार्थ किया गया एकाध संकल्प भी कभी निष्फल नहीं जाता। प्रत्येक जीव की उसकी योग्यता के अनुसार भलाई करने का अहर्निश प्रयत्न करता रह। किसी प्रकार की निंदा–लांछन के कारण तुम्हें किंचित मात्र भी निरूत्साहित होने की आवश्यकता नहीं है। ज्ञानी पुरुषों की दृष्टि प्रायः उर्ध्वगामी होती है–तभी तो :

हे चेतन! तुम अपने मूल स्वभाव–धर्म के अनुसार जगत् पर दृष्टिपात करोगे तो निस्संदेह विशाल दृष्टि विकसित होगी। साथ ही यह न भूल कि तुम्हें नित्य प्रति यही धर्म व्यापार करना है

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

३४. विशाल दृष्टि

जो मानव नाम, रूप, लक्ष्मी, काम, भोगोपभोग एवं बाह्य ममत्वमें उलक जाता है, उसे धर्म नामक वस्तु की कतई दरकार नहीं होती। ऐसे लोग नामादिक के बनने के कारण पुरुषार्थ के सेवक नहीं बन सकते।
—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

पादरा
दिनांक : ४—३—१९१२

नाम, कीर्ति, महत्ता व प्रतिष्ठा के बुलबुले की आशा रख कर विश्व एवं अपना श्रेयः करने से किसी भी कार्य की परिपूर्ण सिद्धि नहीं हो सकती।

अन्यजनों से मैं महान हूँ सदृश अहंकार को विस्मरण कर सर्व आत्माओं एक—सा समझ उनमें निहित सद्गुणों की उन्नति जिन—जिन उपायों से संभव हैं, उनका अनुसरण रुपी सेवा करनी चाहिए। ऐसी अवस्था प्राप्त होने पर मानव को सर्व सद्गुणों को विकसित करने हेतु प्रायः निष्काम सेवा का अधिकार प्राप्त होता है।

किसी भी आत्मा को शत्रु न मान, उसकी उन्नति...प्रगति हेतु यथाशक्ति जो संभव हो, वह अवश्य करना चाहिए। इस तरह सर्व जीवों के सेवक या मित्र बन, उनका श्रेयः करनेवाला मानव सचमुच अनेकविध लोगों को जैनधर्म के प्रति अनन्य अनुरागी बना सकता है।

जो मानव नाम, रूप, लक्ष्मी, काम, विषय—वासना, भोगोपभोग एवं बाह्य ममत्व में उलझ जाता है, उसे धर्म नामक वस्तु की कतई दरकार नहीं होती। ऐसे लोग नामादिक अर्थात् यश लोलुपता के सेवक बनने के कारण पुरुषार्थ के सेवक नहीं बन सकते।

वस्तुतः श्री वीर प्रभु की भाँति जो धन, कीर्ति, प्रतिष्ठा व सुख आदि बाह्य वस्तुओं को तुच्छ मान, उसका परित्याग करता है। निस्संदेह वही धर्म का प्रचार करने में समर्थ सिद्ध होता है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यदि भारतवासी आर्य जैन अब भी स्वार्थ त्याग कर स्व तथा जगत् के उद्धार हेतु जागृत नहीं होगा तो वह मनुष्य श्रेणी में गिने जाने के योग्य भी नहीं रहेगा।

जो कोई जैन धर्म का उद्धार करने की भावना रखता हों, उन्हें नये पंथ की स्थापना करने की कल्पना तक अपने मन में नहीं करनी चाहिए। कारण पंथ निकालनेवाले की दृष्टि संकुचित और विचारधारा संकीर्ण होती है। बिना विशाल दृष्टि अपनाये–जिसका क्षेत्र विराट् है ऐसे जैन धर्म का अधिकारी नहीं बन सकता। यहाँ विशेष रूप से इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि विशाल दृष्टि का अर्थ जैन सिद्धांतो से विपरीत मनकी मिथ्या भ्रमणा के रूप में कोई न ले। बल्कि सदैव उदारता का परिचय अन्यजनों को धर्म की अपूर्व भेंट प्रदान करनी चाहिए। हमारे धर्म में सर्व सुखों का संचय पयप्ति मात्रा में है। अतः जैनियों को अपने जैन धर्म का प्रचार–प्रसार उदार भाव से करना चाहिए।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

३५. मौन की महिमा

मौन धारण करने के उपरांत भी जो
सद्गुणों का उपार्जन करता है।
निस्संदेह उसके गुणों की मीठी महक
बिना कुछ कहे ही निरंतर सर्वत्र
प्रसारित होती रहती है।
—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

पादरा
दिनांक : ७—३—१९१२

विविध प्रकार की भाषादि पर पांडित्य प्राप्त कर जो मनुष्य अहंकार के सिंहासन पर आरुढ हो जाते हैं। वास्तव में वह मनुष्यत्व के लिए सर्वथा अयोग्य है। किसी भी तरह से दूसरों को नीचा दिखाकर अपना उत्कर्ष साधने का जो प्रयत्न करता है वह बुझने के लिए तत्पर दीपक को टिमटिमाती रोशनी जैसा है। जिसके मन—मस्तिष्क में दूसरों का उत्कर्ष...प्रगति कतई नहीं सुहाती निस्संदेह उसकी पंडिताई को खोखली समझनी चाहिए।

अध्यात्मयोग में अहर्निश रमणता करनेवाले की बाह्य विद्वता सफल होती है। जिसकी दृष्टि प्रशस्य प्रेममयी नहीं हो पायी, उसके नैनों में पल—प्रतिपल राग—द्वेष का विकार तरंगित रहता है।

जिसके मन में निजात्मा के ज्ञानादि गुण उजागर करने की भावना पखान नहीं चढ़ी, ऐसा मूढ जीव प्रायः दया का पात्र बनता है। जिसमें श्रावक के इक्कीस गुणों का प्रादुर्भाव हुआ नहीं है, ऐसे श्रावक को साधु आदि दूसरों की निंदा में न फंस उपर्युक्त गुणों को आत्मसात् करना चाहिए।

साधुजनों को अपने आचार, आचरण व सुविचारों से पृथ्वी को सुशोभित करनी चाहिए। उत्तम चारित्र व विशिष्ट मौनावस्था से भी दूसरे लोगों पर जो असर होती है, वह उत्तम चारित्र विहीन अवस्था विशिष्ट प्रकार के चारित्रोपदेश से भी नहीं कर सकती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मौनधारण करने के उपरांत भी जो सद्‌गुणों का उपार्जन करता है। निस्संदेह उसके गुणों की मीठी महक बिना कुछ कहे निरंतर सर्वत्र प्रसारित होती रहती है।

जनमानस में कीर्ति बढ़े या अमुक प्रकार के स्वार्थ की सिद्धि हो या मेरा नाम प्रसिद्धि की ज्योत से जगमगाता रहे आदि अप्रशस्य भावनाओं का परित्याग कर यदि उत्तम चरित्र का संवर्धन करने का प्रयत्न करने से जनसमाज को सन्मार्ग पर अग्रसर कर सकते हैं। कितनेक अल्पभाषी लेकिन उत्तम सद्‌गुण व चारित्र धारक लोगों को दृष्टिगोचर....परिलक्षित कर कई लोग स्वेच्छया ऐसे सर्वोत्तम चारित्रलक्षी बनने हेतु प्रयत्नों की पराकाष्ठा करते हैं।

उत्तम चारित्र व मनमोहक उपदेश प्रदान करने की अद्‌भुत शक्ति का संचय होता है तो वह दुग्ध–शर्करा योग सदृश होता है।

अहंकार त्याग करने के फलस्वरूप पांडित्य प्राप्ति होने पर उत्तम सद्‌गुणमय चारित्र–मार्ग में प्रयत्नशील हो, निज विद्वत्ता को सफल करना चाहिए।

निरंतर बकवास करते रहने के बजाय अल्पभाषी बन, अपने गुणों के बल पर दूसरों को प्रभावित करना चाहिए।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

३६. हृदय—प्रेम का पद्मसागर

किसी भी साधु अथवा श्रावक के
मन में दूसरे का खराब करने की
भावना या प्रवृत्ति जग पड़े तो ऐसा
साधु अगर श्रावक श्री महावीर प्रभु
के मार्ग से च्युत...विचलित होता है।
—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

पादरा
दिनांक : ८—३—१९१२

द्वेषाग्नि जहाँ उत्पन्न होती है वह उक्त स्थान को नष्ट—भ्रष्ट कर देती है। जो मानव द्वेषाग्नि का सेवन करता है वह निज आत्मा के गुणों को उसमें भस्मीभूत कर देता है। जबकि जो द्वेषाग्नि को शांत कर देता है वह मानव—जाति का कल्याण करने में समर्थ बनता है।

दुर्गुणों पर विजयश्री प्राप्त किये बिना मानव सही अर्थ में शूरवीर नहीं कहलाता। विषय—वासनादि, ठीक वैसे ही अनेक प्रकार के स्वार्थ रूपी दानव को जो ज्ञानाग्नि में बलिदान देते हैं। वास्तव में उन्हें ही भावयज्ञ के कर्ता एवम् सूत्रधार मानना चाहिए। प्राणधारी पशुओं की जो यज्ञ में आहुति देते हैं, उन्हें नराधम....राक्षस की उपमा न दें तो भला और किसे देनी चाहिए ?

अशुभ स्वार्थ—प्रवृत्ति का त्याग किये बिना दया व दान नहीं कर सकते। जितने अंश में दान कर सकते हैं उसी के अनुपात में त्याग व ममता का परित्याग कर सकते हैं। वैसे ही अशुभ इच्छाओं का त्याग किये बिना श्रेष्ट पद कदापि प्राप्त नहीं कर सकते।

जो मानव अपने हृदय—सरोवर को शुभेच्छाओं की जल—धारा से अथाह....आकंठ भर देता है, उसके आत्मा में सद्गुणों के कमलदल विकस्वर हो उठते हैं। प्रबल पुरुषार्थ के बल पर अशुभ भावनाओं के साथ तुमुल युद्ध कर साधुजनों को महावीर योद्धा के रूप में अपना नाम उज्ज्वल बनाना चाहिए।

किसी भी साधु अथवा श्रावक के मन में दूसरे का खराब करने की भावना

For Private and Personal Use Only

या प्रवृत्ति जग पडे तो ऐसा साधु व श्रावक महावीर प्रभु के मार्ग से च्युत...भ्रष्ट होता है।

चंडकौशिक नाग पर श्री महावीर प्रभु की जैसी करुणा–दृष्टि थी यदि उक्त दृष्टि का महावीर के अनुयायियों में प्रादुर्भाव हो जाय तो निस्संदेह उनके सहवास सम्पर्क का अन्यजनों पर शुभ परिणाम....खासा प्रभाव पड़े बिना नहीं रहेगा। अरे, जैनियों के शुभ आचार व शुभ विचार में इतनी सारी शक्ति है कि दूसरों पर उसका असर हुए बिना नहीं रहेगा।

अतः मानव को चाहिए कि उत्तम आचार व विचारों को वृद्धि करने का अहर्निश प्रयत्न करते रहना चाहिए। वैसे ही अशुभ विचार व अमांगलिक आचारों को जडमूल से उखाड फेंकना चाहिए।

हे आर्य जैनों! तुम्हें आत्मिक सद्गुणों को विकसित करने का अमूल्य अवसर जो प्राप्त हुआ है, उसे सफल बनाना न चूको।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

३७. पर–निंदा–विषवेलड़ी

पांडित्य प्राप्त करना सरल है।
साधुवेश धारण करना सरल है।
लेकिन ईर्ष्या व निंदा का त्याग
करना, वास्तव में मुश्किल है।
–श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

पादरा
दिनांक : ९–३–१९१२

कहावत है कि, "कनक व कामिनी का परित्याग करना सहज सरल बात है। लेकिन परनिंदा व इर्ष्या का त्याग करना अत्यंत दुष्कर है।"

जो व्यक्ति परार्इ निंदा करने हेतु अपनी योग सिद्धि का उपयोग करता है वह अपनी शक्तियों को खो बैठता है। किसी की बुराई करने के पूर्व यदि मनुष्य तनिक भी विचार करे तो सचमुच वह निंदा करने की आदत ही छोड़ देगा।

दूसरों की निंदा करनेवाले अपने आत्मा का ही अपकर्ष करते हैं। निंदक की जीभ तलवार की धार के समान तेज होती है। वैसे ही ईर्षा करनेवाले की आँख धूमकेतु की उपमा को सार्थक करती है। निंदा व ईर्षा करने से आत्मा की निर्मलता नहीं होती।

पांडित्य प्राप्त करना सरल है। साधुवेश धारण करना सरल है। लेकिन ईर्षा व निंदा का त्याग करना वास्तव में मुश्किल है।

जिस तरह जहरीले सर्प से सभी भयभीत होते हैं, उसी तरह निंदक व ईष्यालु व्यक्ति से सब डरते हैं। भगवान महावीर का कहना है कि पापी जीवों के प्रति सदैव दयाभाव रखना चाहिए ना कि उसका तिरस्कार कर या उसके प्रति क्रोध प्रकट कर नये कर्मबंधन नहीं करने चाहिए। जो लोग देवाधिदेव महावीर कथित मार्ग का अनुसरण करने का प्रयत्न करते हैं। उन्हें सर्व दोषित....पापी जीवों के प्रति करुणाभाव रखना चाहिए और जिसमें जिस अंश में गुण निहित हो, उक्त गुणों के

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अंशानुपात में प्रमोदभाव रखना चाहिए।

मानव में रहे आत्मा के प्रति जिनके हृदय में प्रेमभाव प्रकट होता है, ऐसे लोग भूल कर भी कभी किसी की निंदा या ईर्षा नहीं करते। और यदि प्रसंगोपात मोहांध हो, निंदादि दोषपोषक प्रवृत्ति के जाल में फंस भी जाय तो ऐसी स्थिति में अपनी आत्मा में पुनः ऐसे दोषों की पुनरावृत्ति न हो, इस प्रकार के सख्त उपायों का आयोजन करते हैं और श्री वीर प्रभु के मार्ग पर गमन करते हैं।

अनिंदक एवं ईष्यालु मनुष्यों के हृदय निर्मल...पवित्र होने से उनके हृदय में सम्यक्ज्ञान का प्रकाश फैल सकता है। साथ ही ऐसे लोग प्राणी मात्र के प्रेम पात्र बनते हैं और अन्यजनों को सक्रिय सहायता प्रदान कर मोक्ष–मार्ग का प्रवास आरम्भ कर सकते हैं। इस तरह गृहस्थावास या साधु अवस्था में वे अपना कर्तव्य निभाने में सदैव समर्थ सिद्ध होते हैं।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

३८. दृढ़ संकल्प करो

जिस-जिस अंश में पदार्थ का जितना स्वरूप ज्ञात होवे और वह दूसरों के लिए उपयोगी सिद्ध हो, ऐसा हो तो उसका वैसा स्वरूप करने में विवेक से काम लेना चाहिए।
—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

पादरा
दिनांक : २०-३-१९१२

आत्मा में जो-जो गुण प्रकटित करने हों, उनके सम्बन्ध में क्रमशः विचार करना चाहिए। तदुपरांत उक्त गुणों की प्राप्ति हेतु मन व हृदय में अपूर्व उत्साह पैदा करना चाहिए। साथ ही मन ही मन ऐसा दृढ संकल्प करना चाहिए कि उक्त सद्गुणवल्लरी मेरी आत्मा में प्रस्फुटित होनी ही चाहिए।

कई दुर्गुण भी सद्गुण रूप में परिवर्तित किये जा सकते हैं, इस तरह का चिंतन नित्यप्रति करना चाहिए। वैसे ही पक्का निश्चय करना चाहिए कि उत्साह के बल पर गुणावरोधक कर्मावरण को आसानी से छिन्न-भिन्न कर सकते हैं। किसी भी प्रकार की बाह्य पदार्थ की वासना यह आत्मा का मूल स्वभाव नहीं है, इस बात का पूरा विश्वास रखना चाहिए। वैसे ही इस तरह का दृढ निर्धार व्यक्त करना चाहिए कि बिना किसी प्रकार की वासना....मोह के करने जैसा उपयुक्त कार्य मुझे करने चाहिए।

इसी प्रकार यह भी संकल्प करना चाहिए कि जब तक वीतरागावस्था में रहने की अवस्था मेरी नहीं है तब तक मुझे शुद्ध प्रेम धारण कर निष्काम भाव से धर्म-साधना करनी चाहिए और सदा-सर्वदा सत्य, प्रिय व हितकारक वचनों का उच्चारण करना चाहिए।

जिस-जिस अंश में पदार्थ का जितना स्वरूप ज्ञात होवे और वह दूसरों के लिए उपयोगी सिद्ध हो, ऐसा हो तो उसका वैसा स्वरूप करने में विवेक से काम लेना चाहिए।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हृदय में उतना ही रखना, जितना सुनने में, देखने में और जाननें में आया हो। ठीक इसी भाँति किसी भी व्यक्ति के समक्ष...उपस्थिति में जो हमने देखा और जाना है वह एकदम....यकायक बिना अगले व्यक्ति की योग्यता जाने–समझे कभी नहीं कहनी चाहिए। विरोधी भले ही कैसी भी ईर्ष्या से बात....चर्चा करता हो। लेकिन हमें भूल कर भी कभी उनका अशुभ हों ऐसा उनके जैसा प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

कर्म के अचल–अटल सिद्धांत के अनुसार सर्वजीव को शुभाशुभ परिणाम सहते हैं। इस तरह तथ्य को परिलक्षित कर कि कर्म–सिद्धांत के अनुसार ही दुःखों की प्राप्ति होती है, हमेशा समताभाव धारण कर नये सिरेसे कर्म–बंधन नहीं करना चाहिए।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

३९. आत्म–रमणता

मन को नियंत्रित कर आत्मा आंतरजीवन का
भोक्ता बनता है और होता है सहजानंद का
एकमेव रसिया!
–श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

पादरा
दिनांक : ११–३–१९१२

मन मतवाले को आत्मा के साथ सदैव जुड (बाँध) कर रखना चाहिए। उसे व्यर्थ में ही कहीं भटकने के लिए मुक्त नहीं छोड़ना चाहिए। कारण उसके यों जहाँ–तहाँ भटकने से मनः संयम की सिद्धि कदापि नहीं होती। आत्मा की आज्ञा के बिना मन जब तक स्वच्छंदता से भटकता रहता है तबतक संकल्प की सिद्धि नहीं हो सकती।

ऐसा दृढ संकल्प कर कि मन आत्मा के आदेशानुसार ही अपना व्यवहार करें उसको बार बार उपदेश....प्रतिबोध देवें कि जिससे उसमें व्यर्थ के विचार प्रकट नहीं होवें। अपने अधिकारानुसार मन में धार्मिक देव गुरु के विचारों को निरंतर उजागर कर....प्रकटित कर उसके प्रति उसमें रसज्ञता पैदा करनी चाहिए। मन में उसके लिए प्रेमभाव की तरंगे तरंगित हो जाय ऐसा कुछ करना चाहिए।

देव व गुरु के प्रति शुद्ध प्रेम होने पर मन अहर्निश उसी में रमणता करता हैं और परिणामस्वरूप निरंतर उसकी शुद्धि होती रहती है। एक स्थिर उपयोग द्वारा आत्मा के असंख्य प्रदेशों में रमणता करते रहने से मन उसमें लीन–तल्लीन हो जाता है। फलतः आनन्द रस की धारा प्रवाहित होती है। आत्मा के असंख्य प्रदेशों में रमणता करने की जब प्रेम–भावना जागृत होती है तब बाह्यरूप में नीरसता अनुभव होती है और आत्मा में शुद्ध प्रेम की रमणता प्रकट होने से मोह–प्रकृति का प्राबल्य अत्यंत क्षीण हो जाता है।

हाँलाकि द्रव्यानुयोग के तीव्र उपयोग के बिना असंख्य प्रदेशों में रमणता

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

असंभव है। अतः बाल जीवों को तो देव–गुरु आदि में रमणता कर मन को जोडे रखना चाहिए। यदि सूक्ष्म बाबत में मन श्रमित हो जाय तब मन को शांति प्रदान करनी चाहिए। साथ ही उससे नियमित रूपसे काम लेना चाहिए, वर्ना शारीरिक व मानसिक स्थिति बिगडते विलम्ब नहीं लगता। इस तरह आत्मा की श्रेष्ठता की उपेक्षा विघ्नों का सामना करना पडता है....उन्हें सहना पडता है। मन–मस्तिष्क का यंत्र बिगड न जाय, इसकी पूरी सावधानी बरतनी चाहिए।

साथ ही मन पर आत्मा की ऐसी सुंदर सर्वोत्तम सत्ता प्रस्थापित करनी चाहिए कि जिससे मन में शोक, वियोग एवं चिंता के अनुपयोगी विचार उत्पन्न ही न होवे। आत्म–ज्ञान आत्मसात कर मन पर अकुंश रख सकें ऐसी आत्मावस्था किये बिना मन को नियंत्रित करने में वह (आत्मा) शक्तिमान नहीं होता।

मन को नियंत्रित कर उपयोगपूर्वक चलने वाली आत्मा आंतरजीवन का भोक्ता बनती है और होती है सहजानंद की एकमेव रसिया!

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

४०. रस–मीमांसा

बाह्य पदार्थजन्य आनन्दरस लोप हो जाता है। अतः आत्मज्ञानी–ध्यानी योगीजन आत्मा के सहजानंद रस–प्राप्ति हेतु अंतर में लीन–तल्लीन हो जाते हैं।
–श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

पादरा
दिनांक : १२–३–१९१२

किसी भी विषय (बाबत) में आनन्द आता है तब निद्रा नहीं आती। जबकि जिसमें समझ नहीं पडती और विषय अच्छा नहीं लगता तब हम उकता जाते हैं।

जिसकी जिस प्रमाण में दृष्टि विकसित हुई हो, उसे उक्त दृष्टि के अधिकार से सम्बन्धित विषय....वस्तुओं में मजा आता है। बालकों को जिसमें आनन्दानुभूति होती है, उसमें युवावर्ग को नहीं होती। भोगीजनों (विषयासक्त) को जिसमें मजा आता है उसमें योगीजनों को नहीं आता। युवकों को जिसमें सुख....आनंद मिलता है, उसमें वृद्धजनों को नहीं मिलता। कथा–रसिकों को कथा–श्रवण करने में मजा आता है। लेकिन दार्शनिकों को उसमें मजा नहीं आता। शिकारियों को जिसमें आनन्द आता है, उसमें दयालुओं को नहीं आता। तत्त्ववेत्ताओं को जिसमें मजा आता है, उसमें अज्ञानियों को कतई नही आता। मिथ्यात्वियों को जिसमें आनन्द मिलता है, उसमें सम्यक्–दृष्टिवालों को नहीं मिलता। अरे, भक्तजनों को जिसमें सुख मिलता है, उसमें योद्धाओं को नहीं आता।

इसका कारण यह है कि सर्व जीवों की अपनी भिन्न–भिन्न पार्श्वभूमियाँ हैं। फलस्वरूप बुद्धि, रुचि एवं अधिकार भेद से उनमें रही विभिन्न पार्श्वभूमि योगवश विभिन्न प्रकार के रस भेद भी दृष्टिगोचर होते हैं।

बाह्य पदार्थों द्वारा आज्ञानवश जिस आनन्दरस का भोगोपभोग किया जाता है। वस्तुतः वह क्षणिक होने के कारण वह खत्म हो जाता है। बाद में उसे [illegible] जाय

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तो क्षणिक वस्तुओं के माध्यम से प्राप्त आनन्दरस, आनन्दरस नहीं होता। नाटक–सिनेमा देखने अथवा बच्चों को खेलाकर जो आनन्दानुभूति प्राप्त की जाती है, निहायत वह क्षणिक होने के कारण उसे शाता वेदनीय मानी जाती है और एक प्रकार से वह दुःखप्रद ही है।

बाह्य पदार्थजन्य आनन्दरस खत्म हो जाता है। अतः आत्मज्ञानी–ध्यानी योगीजन आत्मा के सहजानंद रस–प्राप्ति हेतु अंतर में लीन–तल्लीन हो जाते हैं। आत्मा स्वयं नित्य होने के कारण आनन्दरस भी नित्य है। फलतः सहजानंद का उपभोग लेते ही बाह्य पदार्थ द्वारा आनन्द रस लेने की इच्छाएँ मृतप्रायः हो जाती हैं और आत्मा को सहजानंद रस का अनुभव तथा उसका दृढ निश्चय हो जाने से मन, वाणी व काया के योग का व्यापार भी आत्मा के आनन्दरस

ज्ञानीजनों की अंतिम खोज आत्मा का सहजानंद रस–प्राप्ति होने से रस के कारण उन्हें जो–जो अनुभूतियाँ होती हैं उसमें भी रुचि पैदा होती है। फलतः उक्त साधनों द्वारा उनका चित्त स्थिर होता है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

४१. दयालु माता तुल्य—गीतार्थ गुरु

गीतार्थ गुरु की दृष्टि विशाल होती है। वे मानव के दुर्गुणों को दूर कर उसके प्रति सदैव माता—तुल्य प्रेम प्रदर्शित करते हैं। वे दयावान, निस्वार्थी, ज्ञानी मुनिवर होते हैं।

—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

पादरा
दिनांक : १५—२—१९१२

गीतार्थ गुरु के वचनानुसार जो मानव धर्माराधना करते हैं और धर्म—सेवा में रत रहते हैं, वे कभी पथ—भ्रष्ट नहीं होते, ना ही गलत मार्ग में फंसते है।

भूल कर भी कभी द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव से प्रतिकूल हो, धार्मिक मनोवृत्तियों का व्यय नहीं करना चाहिए। शुद्ध प्रेम के बिना कभी किसी को अपने धर्म के प्रति आकृष्ट नहीं कर सकते। औरंगजेब एवं अल्लाउद्दीन खिलजी की भाँति जो धर्म के नाम पर तलवार चलाते हैं, उन्हें परमात्म पद की प्राप्ति नहीं होती।

सत्य, प्रतिबोध व शुद्ध प्रेम के बिना धर्म की वृद्धि नहीं कर सकते। जिनके हृदय—सागर में शुद्ध प्रेम एवं दया की शीतल तरंगे नहीं उठती, ऐसे लोगों के आचार व विचार प्रायः शुष्क होते है। गीतार्थ गुरु ऐसी सभी बातों की मनुष्यों को समझ देते हैं और उन्हें धर्म—मार्ग पर अग्रसर करते हैं। जबकि सद्गुणहीन मानव सत्य धर्म—मार्ग में अधर्म रूपी कँटीले वृक्ष लगाते हैं और वहीं काँटे उनके शरीर में धँसने से व्यथित हो, दुःखी होते हैं।

अरे, सद्गुणविहीन विद्वान् व्यक्ति ज्वालामुखी की तरह होता है। शुद्ध प्रेम, दया, परोपकार, गंभीरता, सौजन्यता, नगर—सेवा, आत्म—दृष्टि आदि सद्गुणविहीन लक्ष्मीरूपी सत्ताधारी मानव एकाध कुत्ते, बिलाव और बाघ की तरह अपना जीवन व्यतीत करता है। उपर्युक्त गुणों के अभाव में गुरू भी सद्गुणों के आधार पर दुनिया का पालन—पोषण नहीं कर सकते।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वास्तव में ज्ञानी गीतार्थ मुनिवर स्वाधिकारानुसार प्रत्येक मनुष्य को दुर्गुणों के जाल से मुक्त होने तथा सद्गुण–प्राप्ति के आचार–विचार प्रदान कर मात्र–कल्पवृक्ष की उपमा को सार्थक करते हैं।

मानव मात्र को धिक्कारनेवाले, तिरस्कृत करनेवाले व असह्य पीडा पहुँचानेवाले असंख्य लोग होते हैं। किन्तु उसमें रहे दुर्गुणों को दूर कर उसके प्रति सदैव माता का प्रेम प्रदर्शित करनेवाले निस्वार्थी, दयावान, प्रेमी एवं ज्ञानी ऐसे केवल मुनिवर ही होते हैं।

गीतार्थ गुरु की दृष्टि विशाल होती है। उनमें एकाध डॉक्टर की भाँति मानवजन्य दोष दूर करने तथा उनकी आत्मा की उन्नति साधने के विविध उपाय अन्वेषित करने की शक्ति व क्षमता होती है।

जो दोषितों को हलका कमीना और निष्कृष्ट समझते हैं, उनकी गणना उत्तम पुरुष, महात्मा या सज्जनों में कभी नहीं होती। दूसरे को अपने से कम न समझनेवाले एकमात्र मुनिवर ही धर्म का प्रचार व प्रसार करने में समर्थ होते हैं।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

४२. विश्व–एक बगीचा

उद्यान में पुष्पित विभिन्न पुष्पों की भाँति मानवोद्यान भी अनेकानेक विचारों की महक से वातावरण को भर देता है। "नंदीसूत्र" व "विशेषावश्यक" में उल्लेख है कि सम्यक्–दृष्टि मानव में मिथ्या शास्त्र व विचारों को सम्यक्त्व भाव से रूपान्तरित करने की शक्ति उत्पन्न होती है।
–श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

पादरा
दिनांक : १९–३–१९१२

विश्व के विविध लोगों के विचार अवश्य श्रवण करें। लेकिन उक्त विचारों के सम्बन्ध में विवेकपूर्वक चिंतन–मंथन कर आदेय विचारों को ही हृदय में स्थान देवें।

उद्यान में पुष्पित विभिन्न पुष्पों की भाँति मानवोद्यान भी अनेकानेक विचारों की महक से वातावरण को भर देता है। जिन्हें सम्यक्त्वपूर्वक ज्ञान हुआ हो, वे मानव–समुदाय के विविध विचारों को सम्यक्त्व के बल पर रूपांतरित कर सकते है। नंदीसूत्र एवं विशेषा वश्यक में उल्लेख है कि, 'सम्यक्–दृष्टि मानव में मिथ्या शास्त्र व विचारों को सम्यक्त्व भाव से रूपांतरित करने की शक्ति उत्पन्न होती है।'

जिस तरह विषधर नाग की विषैली दाढें निकाल दी जाएँ तो वह निर्विष हो जाता है। ठीक उसी तरह सम्यक्दृष्टि जीव के लिए दुनिया के अनेकानेक विचार भी सम्यक्त्व रूप में परिणत हो जाते हैं।

वास्तव में सम्यक्दृष्टि प्राप्त करने हेतु अनेकाविध शास्त्रों का गहन अध्ययन–अभ्यास करना चाहिए। द्रव्यानुयोग शास्त्रों का अभ्यास कर सम्यग्दृष्टि प्राप्त करनी चाहिए।

मानवोद्यान जिसकी जैसी इच्छा हो, उसे उक्त विचार रूपी महक से भर देता है। मानव–विचार रूपी वातावरण विभिन्न प्रकार के भिन्न–भिन्न वृक्ष के समान होता है। अतः विवेक–ज्ञान प्राप्त होते ही विचार–वातावरण में से उपयुक्त व उपयोगी विचार प्राप्त कर सकते हैं।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सम्यग्–दृष्टि प्राप्त करनेवाला जैन सत्य व विवेक के बल पर सत्य–धर्म को प्राप्त कर सकता है। साथ ही ऐसे व्यक्ति में कदाग्रह एवं अतरग्थवृत्ति तो कभी रह नहीं सकती। वस्तुतः वे जो भी लेखन करते हैं या उपदेश प्रदान करते हैं, उसमें अपेक्षाभाव अवश्य होना है। अर्थात् लेख, ग्रंथ उपदेश में से वे उपयोगी सारांश, अपेक्षाएँ व उद्देश्यों को अवश्य बटोर लेते है। वे अपेक्षापूर्वक आचार–विचारों को आत्मसात कर तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल व भावादि के विशिष्ट प्रकार के ज्ञाता बन समस्त विश्व को शुभ विचार और शुद्ध आचारों का लाभ प्रदान करने में समर्थ बनते हैं। ऐसे सम्यग्दृष्टि लोग तैयार करने में....उत्पन्न करने में कठोर परिश्रम करना पड़ता है।

ऐसे सम्यग्दृष्टि लोग निरक्षरों मे भी अल्प संख्या में होने के बावजूद भी अपने अपूर्व ज्ञानबल से अपेक्षाकृत मूर्ख लोगों को स्वयं द्वारा निर्धारित मार्ग पर ले जाने में सफल हो सकते हैं और गवर्नर–जनरल, पॉलिटिकल एजेन्ट व संसद–सदस्य की भाँति धार्मिक विचार–क्षेत्र में अत्युच्च पद पर आरुढ होते हैं।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

४३. त्रिवेणी

मन, वचन व काया की शक्ति का विभाव अर्थात् राग–द्वेषादि भाव आत्म सम्मुख प्रकट होवें तो संसार की वृद्धि होती हैं, अतः त्रियोग (मन–वचन–काया) की शक्तियों द्वारा आत्मा के शुद्ध स्वरूप में परिणत होना चाहिए।
–श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

पादरा
दिनांक : २०–३–१९१२

काया के बनिस्बत वाणी का कार्य शीघ्रगामी होता है और वाणी के बनिस्बत मन का कार्य अत्यंत वेग से होता है। जबकि मन के बनिस्बत ज्ञान का कार्य अत्यधिक वेग से होता है। वस्तुतः काया की तुलना में वाणी एवं वाणी की तुलना में आत्मा की शक्ति व क्षमता अनन्य असाधारण होती हैं।

सर्व शक्तियाँ अपने–अपने स्थान पर बलशाली हैं। तात्पर्य यह कि मन, वचन एवं काया के योग बिना आत्म–धर्म की साधना नहीं हो सकती। अतः मन, वचन, व काया की शक्ति को आत्माभिमुख करनी चाहिए। आत्मा के ज्ञानादि गुणों की शुद्धि के लिए त्रियोग की अत्यंत आवश्यकता है।

मन, वचन व काया के औदयिक भाव भी अन्य जीवों के लिए साधन सापेक्षा से धर्म हेतु परिणमित होते हैं। मन, वचन तथा काया के कारण स्व एवं पर को जो लाभ होता है, उसका वर्णन करते पार नहीं आता।

मन, वचन, व काया की शक्ति का विभाव अर्थात् राग–द्वेषादि भाव आत्म सम्मुख प्रकट होवें तो संसार की वृद्धि होती है। अतः त्रियोग की शक्तियों द्वारा आत्मा के शुद्ध स्वरूप में परिणत होना चाहिए।

जो त्रियोग का सदुपयोग नहीं करते वे अपनी आत्मा, ठीक वैसे ही अन्य जीवों का हित साधने में कभी शक्तिमान नहीं होते। लक्ष्मी आदि के माध्यम से जो उत्तम कार्य नहीं हो सकता सचमुच वह कार्य त्रियोग–साधना से हो सकता है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्रियोग में आत्म-वीर्य की परिणति करना ही प्रधान धर्म है। अरे, त्रियोग की शक्तियों के सदृश कोई व्यवहारिक ऋद्धि नहीं है। परिणामतः मन, वचन तथा काया को योग-शक्तियों को कसा कर....सधा कर उन्हें शुभ मार्ग पर उपयोग करने का अभ्यास करना चाहिए।

आत्मा की त्रियोग रूपी शक्तियों का सदुपयोग करनेवाले इस संसार में धर्म-प्रचार करने में सदैव शक्तिमान होते हैं। आत्मा के तीन योग से उसके शुद्ध धर्म की प्राप्ति करने हेतु व्यवहारनय की अपेक्षा से उत्सर्ग मार्ग व अपवाद मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए। व्यवहार नय व निश्चय नय कथित आत्म-शक्तियों का सदैव प्रकाश फैलाना चाहिए।

उत्साह व उमंग से शक्तियों में वृद्धि होती है। अतः आलस्यादि का परित्याग कर जिस तरह आत्म-शक्तियाँ प्रकट हों, उस प्रमाण में तीन योगों में प्रवृत्ति करनी चाहिए।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

४४. प्लेग के जंतु

जो लेखक विश्व को दिव्य लेख समान
सद्गुणों से विभूषित करते हैं, वे लेखक
ही लेखक नाम को सार्थक करते हैं।
अशुभ विचारों का प्रचार व प्रसार
करने वाले लेखक तो प्लेग के जंतु
फैलानेवाले पिस्सू ही मानने चाहिए।
—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

पादरा
दिनांक : २१—३—१९१२

राग व द्वेष के कारण जिनके मन—मस्तिष्क व अंतःकरण वासित हो गये हों, वे अपने मन, वचन एवं काया के बल को अहित मार्ग में प्रवर्तित कर सकते हैं। प्रायः वे वाणी, लेख तथा सत्ता के माध्यम से अन्य जीवों को परेशान....त्रस्त करने का प्रयत्न करते हैं।

क्रोधीजन क्रोध के कारण जगत में अशुभ विचारों का वातावरण फैला कर एक तरह से हिंसक बनते हैं।

क्रोध व ईर्ष्यादि दुर्गुण—धारक कई लेखक अपने पत्र—पत्रिका आदि में बारुद भर वाचक—वर्ग के हृदय में क्रोधादि दुगुर्णों की अधिकाधिक उत्पत्ति हो, ऐसे उत्तेजक लेख लिख कर भाव कसाई की पदवी का सरेआम अनुसरण करते हैं। जबकि कई लेखक प्रतिशोध लेने की भावना से अशुभ लेख रूपी विषवृक्ष बोते हैं। फलतः उसके दुष्परिणामों को उन्हें भोगना पड़ता है... सहना पड़ता है।

मन, वचन व काया की शक्तियों का सार्वजनिक रूप से दुरुपयोग करनेवाले लोग वस्तुतः अपने पाँवो पर कुल्हाड़ी मार कर अपना ही नाश करते हैं।

जो लेखक अपने द्वारा लिखित लेखों से विश्व में किस प्रकार के शुभाशुभ परिणाम होंगे, इसके सूक्ष्म रहस्य से अज्ञात होते हैं, वे लेख लिखने लायक (योग्य) नहीं माने जाते। केवल पत्र—पत्रिकाएँ प्रकाशित कर तथा ग्रन्थादि का लेखन कर अमुक कामना की पूर्ति करने के प्रधान उद्देश्य को हृदय में सजो कर जो कार्य करते

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हैं और वाचक–वर्ग के हृदय को जहर से आकंठ भरने में सहायक बनते हैं, वास्तव में ऐसे लोगों के जन्म धारण करने की उपयोगिता कतई नहीं होती। जो स्वार्थ, तृष्णा एवं लोभादि के अधीन हो, लेख लिख कर सत्धर्म से दूर जाते हैं। वास्तव में वे मनुष्य कहलाने के लायक बिल्कुल नहीं होते।

जिन लेखों के माध्यम से मानव–मन में सद्गुणों का बीजारोपण होता हो और दुर्गुणों से सम्बंधविच्छेद करने ही रुचि प्रकट होती हो साथ ही आत्मोन्नति हेतु पुरुषार्थ करने की भावना व प्रवृत्ति उत्पन्न होती हैं. निस्संदेह ऐसे लेख जगत के इतिहास में सुवर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य होते हैं। जो लेखक विश्व को दिव्य लेख समान सद्गुणों से विभूषित करते हैं वे लेखक ही लेखक नाम का सार्थक करते है।

जिन लेखों के माध्यम से किसी की व्यक्ति गत टीका–टिप्पणी व आलोचना बाह्य व अभ्यंतर से ज्ञात नहीं होते और दोष तथा गुण सम्बन्धित पात्रों का प्रभाव दूसरे पर न पडता हो– वही उत्तम लेखक होते हैं।

अशुभ विचारों का प्रचार व प्रसार करनेवाले लेखकों को वास्तव में प्लेग के जंतु फैलानेवाले पिस्सू ही मानने चाहिए।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

४५. परमात्म पद

जिसके मन में बाह्य पदार्थों के कारण हर्ष अथवा शोक की उत्पत्ति नहीं होती, वास्तव में ऐसी अवस्था प्राप्त आत्मा सच्चे अर्थ में क्रियायोगी बन सदैव निर्लिप्त रहकर प्रायः असंख्य जीवों का उद्धार करने में समर्थ होता है ।
—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

पादरा
दिनांक : २२–३–१९१२

आत्मा में जब क्षयोपशम ज्ञान द्वारा रमणता की जाती है तब आनन्द का पारावार नहीं रहता। मन की अवस्था शांत–प्रशांत में परिवर्तित हो जाती हैं तब ऐसा प्रतीत होता है जैसे संभार में कोई कार्य... दायित्व शेष रह गया हो। जैसे जैसे मन शांत होता जाता है और आत्म–स्वरूप में रमण करता है वैसे वैसे गत शरीर की भाँति बाह्य विश्व विस्मृत हो जाता है ! ऐसी स्थिति में मानसिक व्यापार बंद होने के कारण लेश्या व कर्म–चक्र भी अमुक अंश में व्यापार (प्रवृत्ति) विरहित हो जाता है।

जिस मन के द्वारा कर्म–बंधन होता है।, वास्तव में वह आत्मा से जुड़ा हुआ होने के कारण कर्म–बंधन हो नहीं सकता...। आत्मा से जुड़ा हुआ मन व वध आनन्दानुभूति में आकंठ डूबा मन वास्तव में अद्वैतभाव का अनुभव करता है ।

कई बार मानव–मन बाह्य पदार्थों में नहीं लगता जबकि क्षयोपशम भाव का उपयोग सदैव एक तरह का न होने के कारण हमेशा ऐसी स्थिति नहीं रहती और शरीरादि अथवा अन्यजनों के श्रेयार्थ मन को दूसरे पदार्थों के साथ सम्बन्धित करना पडता है। फलतः इस प्रकार वह मन आत्मा के साथ एक–सा तादात्मय साध नहीं सकता... रमण नहीं कर सकता।

आत्मा के साथ जब मन जुड़ा हुआ होता है, तब ज्ञाणावरणीयादि कर्म का क्षयोपशम हो जाने से आत्मा के ज्ञानादि गुणों की पुष्टि निरंतर होती रहती है ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मन की चंचलवृत्ति दूर होते ही तथा ध्यान के माध्यम से मन को ध्येय–वस्तु में स्थिर करने से आत्मा के उपयोग में वृद्धि होती है... वैसे ही मन में बाह्य पदार्थ सम्बन्धित हर्ष या शोक का भाव उत्पन्न न हो, ऐसी शिक्षा ग्रहण करने से विश्व में अलौकिक जीवन प्राप्त हो सकता हैं । साथ ही उसे स्व– निर्धारित मार्ग पर अग्रसर कर सकते हैं। मन की ऐसी सर्वोत्तम अवस्था प्राप्त किये बिना जगत में कोई भी महान महात्मा नहीं हो सकते।

जिस के मन में बाह्य पदार्थों के कारण हर्ष अथवा शोक की उत्पत्ति नहीं होती, वास्तव में ऐसी अवस्था प्राप्त आत्मा सच्चे अर्थ में क्रियायोगी बन, सदैव निर्लिप्त रह कर प्रायः असंख्य जीवों का उद्धार करने में समर्थ होता है। कदापि ऐसा मानव आत्मा में रमण करने में जब समर्थ बनता है तब अपने आत्मा के गुणों का आविर्भाव कर तथा परमात्म पद प्राप्त कर अंत में अनंत सुखों का स्वामी बनता है ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

४६. तीर्थ यात्रा की महिमा

जिन लोगों ने जहाँ भक्ति-गूंजन किया हो... धुन मचायी हो- उक्त स्थान पर मनोवर्गणा अन्य मनुष्यों के सम्बन्ध में हुए भक्ति के परिणाम में निमित्त कारणभूत परिग्रह होती है।
- श्रीमद् बुद्धिसागर सूरिजी

पादरा
दिनांक : २३-३-१९९२

प्रायः द्रव्य मन से भाव मन की परिस्फूर्ति होती है। जबकि भाव मन कभी ज्ञेय पदार्थों के पास नहीं जाता और ज्ञेय पदार्थ गमन कर मन के पास जा, उसे प्राप्त नहीं होते। द्रव्य मन या भाव मन इन दोनों में से किसी मन का शरीर के बाहर निकलने का नहीं होता। वस्तुतः कई लोगों की ऐसी मान्यता है कि मन के आंदोलन अर्थात् मनोवर्गणा को बाहर दूसरे मनुष्यों के पास प्रेषित कर सकते हैं, निहायत वह जैनागम के विरुद्ध है।

प्रायः जैनागमों में ऐसा अवबोधित किया जाता है कि मन द्वारा अन्यों के शुभाशुभ चिंतन में तेजस् शरीरादि अन्य पुद्गलों द्वारा अन्य जीवों का शुभाशुभ कर सकते हैं। इसी तरह मनोवर्गणा से अलग हुई ऐसी कृष्णादि अशुभ लेश्या वन शुकलादि शुभ लेश्या के पुद्गल अंतमुहूर्त में अन्य रुप में परिणत होते हैं या असंख्यात काल तक मूल स्वरूप में कायम रहते हैं। अलग हुई ऐसी मनोकर्मण में भी ऐसा ही समझना चाहिऐ।

द्रव्य मन में हमेशा षड़ गुए हानि-वृद्धि स्वरूप उत्पाद-व्यय होता रहता है। इसी तरह भाव मन में भी षड़ गुण हानि-वृद्धि स्वरूप उत्पाद-व्यय निरंतर होता रहता हैं।

उच्च लेश्या के परिणाम स्वरूप द्रव्य मनोवर्गणांतः पाति पुद्गल शुभादि रस परिणाम को धारण करते हैं। और यदि उक्त द्रव्य मन से शुभ पुद्गल अलग हो जाते हैं तो उनकी स्थिति उपयुक्त वचनानुसार ही होती है।

For Private and Personal Use Only

शुभ मनोवर्गणा द्रव्य के पुद्गलों को महात्मा जिस स्थान पर परित्याग करते (छोडते) हैं, निस्संदेह उक्त स्थान की गणना तीर्थ स्वरुप पवित्र भूमि के रुप में होती है। जबकि अशुभ मनोवर्गणा द्रव्य पुद्गलों का जहाँ परित्याग किया जाता हे वह स्थान अपवित्र भूमि माना जाता है।

जिन लोगों ने जहाँ भक्ति–गुंजन किया हो... धुन मचायी हो– उक्त स्थान पर मनोवर्गणा अन्य मनुष्यों के सम्बन्ध में उत्पन्न भक्ति के परिणाम में निमित्त कारणभूत परिणत होती है।

जिन गुफा और कन्दराओं में महात्माओंने समाधि टीक वैसे ही ज्ञान विषयक चिंतन किया होता है । उनकी आत्मा से जो मनोवर्गणा द्रव्य पुद्गल गिरते हैं, वे चिपचिपे.. लसदार एवं मारी हों तो लंबे काल तक कायम रहते हैं और उक्त स्थान पर आगंतुक मनुष्यों के लिए योग समाधि व ज्ञानादि भावना में निमित्त स्वरूप सहायरु सिद्ध होते हैं।

किन्हीं व्याभिचारिणी कामी स्त्रियों से कामोत्तेजक पुद्गल उत्पन्न हों, एक ही स्थान पर बार–बार मँडरा कर काम सम्बन्धित विचारों में तत्मय होते हैं। और वे वहाँ झडते हैं । फलो स्वरूप ऐसा पूप्रकार के कामोत्तेजक विचारोत्पन्न होने में सहायता करते हैं। कसाई आदि विविध शुभाशुभ विचार करनेवालों के बाबत में भी इसी प्रकन् समझना चाहिए।

सिद्धाचलादि तीर्थस्थानों में शुभ लेश्या के पुद्गल झडे होते हैं। फलतः वहाँ की यात्रा करनेवालो में उक्त पुद्गल उत्तम भावना के निमित्त बनते हैं।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

४७. नीति–अनीति

अनीतिमय विचारों के परित्याग से
स्व–आत्मा का हित होता हैं और
समस्त विश्व का हित भी परम्परागत
कम–अधिक प्रमाण में साध सकते हैं ।
– श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

पादरा
दिनांक : २४–२–१९१३

नीति विषयक सद्गुणों के अभाव में आचार व विचार की शुद्धि नहीं रहती। प्रामाणिकता के साथ प्रवृत्ति करनेवाले मानव–मन में शुभ लेश्या का उदय होता है।

मनोद्रव्य का प्रायः समय – समय पर ग्रहण होता है। लेकिन अनंत मनोद्रव्य को समय – समय पर जीव ग्रहण करता है और परित्याग करता है। प्रामाणिक नीति आदि सद्गुणों से आत्मा उत्तम मनोद्रव्य को ग्रहण करती है और अशुभ मनोद्रव्य का परित्याग करती है ।

शुक्ल लेश्या के परिणाम भी बिना उत्तम नैतिक सद्गुणों के नहीं हो सकते। ऐसा अनुमान है कि जिसका आचार अनीतिमय है उसके मन में शुभ लेश्या के सद्भाव के लिए कोई स्थान नहीं होता। ठीक वैसे ही अशुभ कृष्ण लेश्या के परिणाम तथा अशुभ लेश्याजनक मनोद्रव्य को समय – समय पर ग्रहण करता है ।

अशुभ मनोद्रव्य ग्रहण किये हुए आत्मा के नीच परिणाम की परम्परा में वृद्धि करने हेतु समर्थ सिद्ध होते हैं। पागल कुत्ते के विष की भाँति अशुभकारी मनोद्रव्य की परम्परा अशुभ विचारों को उत्पन्न करने में समर्थ होती है।

अनीतिकारी आचार व विचार से स्व–आत्मा को अपरिमित हानि होती है। इतना ही नहीं बल्कि उक्त विचारों के कारण जिस तरह सरोवर में फेंके पत्थर उसमें असंख्य लहरें उत्पन्न करते हैं, उसी तरह सम्बन्धित व्यक्ति तथा समस्त विश्व पर उसकी परम्परागत कम–अधिक प्रमाण में असर हो कर ही रहता है ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अनीतिमय विचारों के परित्याग से स्व–आत्मा का हित होता है और विश्व का हित भी परम्परागत कम–अधिक प्रमाण में कर सकते हैं ।

नैतिक सद्‌गुणों के कारण एक व्यक्ति अलौकिक ज्योतिपुंज की भांति जगत में प्रकाश फैला सकता है। परिणामस्वरूप धर्मोपासकों में नैतिक सद्‌गुणों के माध्यम से (ऐसी दिव्य–ज्योत प्रकट करनी चाहिए कि वे) स्व – आचार व विचारों को ऐसे सर्वांग सुंदर बना लें, जिससे उनका गृहस्थ अथवा श्रमण जीवन एकाध निर्मल आदर्श की तरह जगत के जीवों को सद्‌गुणों की वृद्धि में सहायभूत बन जाय।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

४८. क्रोध को क्षमा से जीतिए

'शुद्ध प्रेम एवं शुद्ध कारण से
क्रोध तथा क्रोधीजनों पर
विजय भी प्राप्त कर सकते हैं।
– श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

पादरा
दिनांक : २५–३–१९१२

हृदय–मंदिर में जब क्रोध का विस्फोट हुआ हो तब संभव हो वहाँ तक किसी के साथ वार्तालाप नहीं करना चाहिए बल्कि क्रोध का शमन हो जाय ऐसा कोई गीत छेड़ना चाहिए या मानसिक शांति हो ऐसी कोई पुस्तक पढ़ना चाहिए अथवा किसी शांत स्वरूप का मन ही मन चिंतन करना चाहिए.

यदि कभी–कभार आज्ञा–चक्र पर चित्त को स्थिर रखा जाय तो क्रोध तुरंत शांत होता है । जिसके कारण क्रोध उत्पन्न हुआ हो, ऐसे स्थान व व्यक्ति से दूर चले जाना चाहिए । अर्थात् वहाँ से हट जाना चाहिए और क्रोध के शांत होते ही पुनः आ जाना चाहिए अथवा सम्बन्धित व्यक्तियों से निकटता रखनी चाहिए।

अत्यंत क्रोधित होने से कषाय समुद्घात होता है। फलतः आत्मा के प्रदेश शरीर बाहर निकल आते हैं। ठीक उसी प्रकार मनोद्रव्य का कृष्णादि लेश्या के स्वरूप में परिणमन होता है । क्रोधकी उत्पत्ति से तेजस् पुद्गलों का प्रकट न होने कारण शरीर में उष्णता का संचार होता है । फलतः अत्यंत क्रूर परिणाम होने से अशुभ गति बंध होता है।

क्रोध के उदय के कारण अग्नि–शिखा की भाँति शरीर से जो–जो पुद्गल बाहर निकलते हैं वे भी क्रोध के संयोगों की उदीरणा में क्रोधोत्पति में परम सहायक सिद्ध होते हैं ।

गोशालक पर तेजोलेश्या का प्रयोग करनेवाले तापस पर क्रोध का भूत सवार हो गया था। फलतः उसने अपनी आत्मशक्ति को वक्रमार्ग पर मोड़कर उष्ण पुद्गलों

For Private and Personal Use Only

में स्वरूप तेजोलेश्या का प्रयोग कर गोशालक को अत्यंत पीडित करने का प्रयत्न किया था। लेकिन उस समय महा कृपालु देवाधिदेव श्री महावीर भगवंत ने करुणा स्वरूप आत्म–शक्ति के बल पर शरीर के भीतर के एवं बाहर के पुद्गलों को सपान्तरित कर शीत लेशया के पुद्गलों से तेजोलेश्या के पुद्गलों को शांत किया था।

दया अथवा कृपा के परिणाम वश शांतिकारक पुद्गल-प्रवाह को सम्मुख व्यक्ति पर प्रवाहित कर सकते हैं। क्रोधोदय के कारण ब्रह्माण्ड में प्रसारित उष्ण पुद्गलों का प्रसारण होता है... फैलाव होता है और उससे मनुष्य के द्रव्य व भाव प्राण की हिंसा परम्परागत की जाती हैं। अतः क्रोध के उदय को प्रतिबंधित करने में सदैव सावथानी बरतनी चाहिए ।

वास्तव में शुद्ध प्रेम एवं शुद्ध कारण से क्रोध तथा क्रोधीजनों पर विजयश्री प्राप्त कर सकते हैं।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

४९. विश्राम की आवश्यक्ता

अलबत्त, सच्ची शांति तो परभाव
रमणता के परित्याग मे ही संभव है ।
– श्रीमद् बुद्धिसागरसूरजी

पादरा
दिनांक : २६–३–१९१२

प्रत्येक कार्य करने के पश्चात् विश्राम करना चाहिए। पेंचेंद्रिय एवं छठे मन को भी अमुक समय पर्यंत विश्राम देना चाहिए। यदि प्रत्येक इंद्रिय से असीम कार्य लिया जाय तो वह शकिविहीन हो निर्बल हो जाती है ।

मनोद्रव्य द्वारा भावमन का विषय प्रवर्तित है । यदि भावमन का कार्य भी अनियमित एवं सीमा से अधिक हो जाय तो मस्तिष्क की नसें थक जाती हैं। फलस्वरूप उससे शारीरिक व मानसिक दुर्बलता की अनुभूति होने लगती है। यदि किसी मन अथवा अवयवों पर चिंतन–मनन का अधिक बोझा... भार पड़ा जाय तो वीणा के तारों (तंतुओं) की भाँति उसका संतुलन बिगड जाता है... मस्तिष्क भ्रमित हो जाता है और उससे मस्तिष्क असंतुलित हो जाता है, यह है पागलपन की स्थिति।

शारीरिक श्रमिकों के बजाय मानसिक श्रम करनेवालों के लिए अमुक समय तक विश्राम करना अत्यंत आवश्यक है। क्योंकि शारीरिक श्रम करने के बजाय मानसिक श्रम (कार्य) करते हुए तुरंत थकावट महसूस होती है ।

जिस प्रकार से फैक्ट्री की मशीनरी में चरबी का उपयोग किया जाता हैं और उसका नाश होता है । ठीक उसी प्रकार मस्तिष्क का यंत्र गतिमान होता है तब वीर्य एवं रक्त का व्यय होता है । अतः मर्यादा से अधिक मानसिक विचारणा करना योग्य नहीं हैं ।

क्रोध, भय, लोभ, राग व अन्य कामेच्छाओं के कारण हृदय पर बुरा असर होता है । फलतः ज्यों पर्वत में विस्फोट करने से उसकी अवस्था होती है वैसी ही

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निर्बल अवस्था मन, काया एवं आत्मा की होती हे ।

प्रायः शारीरिक व मानसिक शक्ति संवर्धित कर उसका उपयोग आत्मा के गुणों को विकस्वर करने में करना चाहिए । किसी वस्तु विशेष का चिंतन करते हुए मन श्रमित हो जाय अथवा काया थकी हुई प्रतीत हो तो अमुक समय तक अवश्य विश्राम करना चाहिए ।

जिनका मन मंदगतिवाला व निर्बल है उन्हें थकावट की अनुभूति होने ही फौरन विश्रांति लेनी चाहिए । वास्तव में विचार–यंत्र विद्युत–यंत्र के वेग से अत्यधिक गतिशील होता है । अतः निरंतर चिंतनशील व्यक्ति अधिकाधिक श्रम करता है । परिणामतः उसे ज्यादा से ज्यादा आत्मभोग देना पड़ता है ।

चिंतनशील (विचारवान्) को प्रायः वीर्यादि का व्यय करना पड़ता है। अतः यदि वह निरंतर शांति के विचार करता रहे तो कई स्थानों पर शांति के विचार प्रसारित कर सकता है । अलबत्त, सच्ची शांति तो परभाव रमणता के परित्याग से ही संभव है ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

५०. शुभ संस्कार अपनाइए

अज्ञानवस्था के कारण ऐसे सूक्ष्म तथ्यों को नहीं समझनेवाले जीव एकाध बालक की माँति बाल बुद्धि से उक्त पदार्थों की इच्छा व्यक्त कर कुसंस्कारों को जन्म देते है ।
– श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

पादरा
दिनांक : २७–३–१९१२

अपने मन में किसी तरह की कामना प्रकटित करने के पूर्व बहुत – बहुत विचार करें..... खूब सोचे और समझे । वैसे ही कामना प्रकट कर तदनुसार आचरण करने की प्रवृत्ति तो असंख्य विचार कर प्रवर्त्तित करने की आवश्यक्ता है।

पंचेंद्रिय विषयक विषयों के सम्बन्ध में स्वमति अनुसार जो–जो कामनाएँ .. इच्छाएँ संजो कर तदनुसार प्रवृत्ति की जाती है । हालाँकि उक्त प्रवृत्ति का त्याग किया जाता है । फिर भी तथाकथित इच्छा के मतियोग से उत्पन्न वासना के योग में प्रवृत्ति का त्याग होने पर भी स्वप्नादि में वासनाओं के विपरीत प्रवृत्ति दिखाई देती है । वास्तव में राग–द्वेष के संस्कार स्वप्न में भी पीडित करने में समर्थ होते हैं।

मन के व्यापार द्वारा राग–द्वेषादि संस्कार या काम–वासनाओं की उत्पत्ति न हो, इसकी हमेशा सावधानी बरतनी चाहिए और पहले से ही विवेक, ज्ञानोपयोग से आचरण करना चाहिए। हिंसा, झूठ, व्यभिचार, निंदा, विषयवासना, शोक, इर्ष्या, क्रोध, मान, माया, लोभ एवं मिथ्यात्व आदि का विचार करने पर उक्त दुर्गुणों के संस्कार आत्मा में उत्पन्न होते हैं ओर वेही संस्कार वास्तव में अकल्पित रूप से स्वप्न में भी अनायास ही प्रकट होते हैं, जो कर्म की वर्गणाओं का आत्मा के साथ सम्बन्ध प्रस्थापित कराते हैं ।

काया के माध्यम द्वारा हमने जिन–जिन पदार्थों का भोगोपभोत्र किया हों, उनके संस्कार तो मानव–मन की गहराई में इस कदर अड्डा जमा लेते हैं कि भले ही उनका भोग व उपभोग नहीं भी किया हों, फिर भी स्वप्न रूप धारण कर पुनः स्मृति में साकार होते हैं और नानाविध कर्म बंधन कराते हैं।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अज्ञाना वस्था में होने के कारण ऐसे सूक्ष्म तथ्य से एकदम अपरिचित जीव एकाध बालक की भाँति बालबुद्धि से उक्त पदार्थों की इच्छा व्यक्त कर कुसंस्कारी को जन्म देते हैं।

मन में रही इच्छाओं के द्वारा जो संस्कार जन्म धारण करते हैं, उनका नाश भी कर सकते हैं। लेकिन स्वेच्छया काया के माध्यम से उनका भोगोपभोग कर लेने से तो दृढ़ लगदार (चिपचिपे) संस्कार उत्पन्न होते हैं। अतः ज्ञानीजनों कोभूल कर भी ऐसे अशुभ पदार्थों का उपभोग करने की इच्छा अपने मन में उत्पन्न नहीं होने देनी चाहिए।

मति के अर्थाग्रह, इहा, अपाय एवं धारणा आदि चार भेद इच्छाओं में प्रवर्त्तित हैं और उनमें अज्ञान तथा अशुद्ध वीर्य का परिगमन होता है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

५१. विनय गुण

कई लोग जो सिर्फ अपने गुणों पर ही अभिमान करते हैं । यदि वे श्री तीर्थंकर द्वारा संघ को किये गये नमस्कार का स्मरण करें तो निस्संदेह वे जैन संघ में रहे किसी भी मनुष्य को समझने तथा उसकी अवहेलना करने की प्रवृत्ति का परित्याग कर सकते हैं।
– श्रीमद् बुद्धिसागरसूरीजी

पादरा
दिनांक : २८–३–१९१२

इस जगत में रहते हुए जहाँ–तहाँ गुण ग्रहण करने का सदैव व्यापार करना चाहिए । स्वयं को सर्वगुण सम्पन्न समझ, भूल कर भी कभी किसी की निंदा या टीका–टिप्पणी नहीं करनी चाहिए । जघन्य अपराधी मानव के जीवन में भी यदि गुणग्राहक दृष्टि से झांका जाय तो उसमें अमुक प्रकार के गुण अवश्य दृष्टिगोचर होते हैं । स्वयं सविशेष गुणों से युक्त होने पर अपने से अधिक दोषित जीवों के प्रति तिरस्कार अथवा उसका अशुभ चिंतन नहीं करना चाहिए ।

श्री तीर्थंकर भगवंत तेरहवें गुण स्थानक पर होते हैं । ठीक वैसे ही देवाधिदेव केवली भगवान के बैठने हेतु देवराज इन्द्र तथा अन्य देवता रत्न सुवर्णमय समवसरण का निर्माण करते हैं । उक्त समवसरण में प्रवेश कर आसनस्थ होते समय स्वयं तीर्थंकरदेव 'नमो तित्थस्स' शब्दोच्चार के माध्यम से सम्यक् श्रुतज्ञान के आधारस्तम्भ ऐसे साधु –साध्वी एवं श्रावक – श्राविका स्वरूप चतुर्विध संघ को नमस्कार करते हैं।

भगवती सूत्र के बीसवें शतक में साधु–साध्वी एवं श्रावक–श्राविकाओं को संघ कहा है और मूल पाट में चतुर्विध संघ के रुप में प्रतिपादन किया है ।

श्री तीर्थंकर भगवान चतुर्विध संघ को नमस्कार करते हैं, इससे महत्त्वपूर्ण सार– ग्रहण करना चाहिए । साधु–साध्वी प्राय : छठवें व सातवें गुणस्थानक पर स्थित हैं। उनमें अभी मोह प्रकृति शेष है । जबकि श्रावक – श्राविकाओं का समावेश चतुर्थ पंचम गुणस्थानक में होता है । उनमें भी जाती कर्म रुपी विविधे दोष निहित

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हैं । तथापि संपूर्ण गुणमय ऐसे श्री तीर्थकरदेव उन्हें नमस्कार करते हैं, इसमें अवश्य गूढ भाव ...रहस्य भेद छिपा हुआ है ।

इस तरह श्री तीर्थंकर भगवान स्वंय कृतकृत्य होने के उपरांत भी विश्व में विनय की परिपाटी सिखाकर अन्यजनों के समक्ष अपना उदाहरण प्रस्तुत कर प्रति बोधित करते हैं कि श्रुतज्ञान या चतुर्विध संघ के माध्यम से ही धर्म परम्परा अबाधित रूप से टिकनेवाली है और इसी में से तीर्थंकरादि महान विभूतिओं की उत्पत्ति होती है । फलतः श्रुतज्ञान या चतुर्विध संघ स्वरूप शाश्वत तीर्थ को नमस्कार करना चाहिए 'विणओ मूळं धम्मस्स' अथाँत धर्म का मूल विनय है । यों भगवान ने सर्वगुण सम्पन्न फिर भी दोषित तथा गुणसम्पन्न तीर्थ कों नमस्कार कर विनय गुण की महत्ता प्रदर्शित की है ।

ऐसे कई लोग जो सिर्फ अपने में रहे गुणों पर अभिमान ...अहंकार करते हैं यदि वे श्री तीर्थकर द्वारा संघ को किये गये नमस्कार का स्मरण करें तो निस्संदेह जैन संघ के किसी भी सदस्य को सामान्य–तुच्छ समझने तथा उसकी अवहेलना करने की प्रवृत्ति का वे त्याग कर सकते हैं ।

श्री तीर्थकर भगवान संघ को नमस्कार करते हैं और इस तरह अपने दासभूत ऐसे संघ को नमस्कार कर जगत के हृदय में विनयगुण का अमिट स्थान प्रस्थापित करते हैं ।

फलत : निरंतर उनके पदचिन्हों का अनुसरन करने वाले साधु, साध्वी, श्रावक– श्राविका तथा अन्यजनों को भगवान द्वारा प्रस्तुत उदाहरण को अपने हृदय में धारण कर भूलकर भी कभी किसी की निंदा अथवा तिरस्कार नहीं करना चाहिए।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

५२. शुद्ध भक्ति– अमृत वृष्टि

जिस की हृदय – धरा पर उत्तम ज्ञान, सत्य, त्यागादि के वृक्ष उग आयें हों तो समझ लेना चाहिए कि उसके हृदय पर उत्तम प्रभु – भक्ति की वृष्टि अवश्य हुई है।
– श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

पादरा
दिनांक : २९–३–१९१२

ज्ञान गर्भित प्रभु की भक्ति में नित्य आकंठ डूबे रहने तथा परमात्मा को ही श्रद्धेयवश अपना एकमेव ध्येय स्वरूप मानने से आत्मा स्वयं ही परमात्मा स्वरूप धारण करती जाती है ।

गुर्जर भाषा में श्रीमद् आनन्दधनजी, श्रीमद् देवचंद्र , श्रीमद् यशोविजयजी, श्रीमद् पद्मविजयजी द्वारा आलेखित स्तवनों में प्राय : उत्कृष्ट असीम भक्ति के सुंदर उद्‌गार (स्वर) यत्र–तत्र दृष्टिगोचर होते हैं । उक्त महात्माओं के हृदयोदधि में ज्ञान परिणति के माध्यम से उत्पन्न व लहराती भक्ति – तरंगें अनुपम ही नहीं, बल्कि अपूर्व हैं, ऐसा नित्यप्रति प्रतिभासित है ।

प्रभु के शुद्ध स्वरूप को ज्ञेय रूप में हृदय में धारण कर तथा प्रभु रूप ज्ञेय के सम्मुख स्वयं ही आत्मा की एकता स्थापित कर आनन्द रूपी रस का आस्वाद लेनेवाले महापुरुष वाकई धन्य हैं ।

भगवान के अस्तिधर्मी के साथ अपने मन को जोड़ना तथा प्रभु–गुणों में अहर्निश लीन–तल्लीन रहना, यह सर्वोत्तम भक्ति माना जाता है । फलस्वरूप परमात्मा के ज्ञानादि गुणों के प्रति मन को इतना तो स्थिर कर देना चाहिए कि स्वप्न में भी उसका भास न हो । निस्संदेह ऐसी उत्कृष्ट भक्ति के अधिकारी गीतार्थ हैं ।

बालजीव प्रायः अपनी बुध्धि की क्षमता के अनुसार भक्ति करते हैं अतः अपनी क्षमता के अनुसार वे जैसी भक्ति करते हैं, उन्हें करने देना चाहिए । लेकिन उन्हें ज्ञान गर्भित पर से आत्मभक्ति के मार्ग पर लाने का निरंतर प्रयास करना

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चाहिए।

किसी भी क्षेत्रकाल में यदि हमारे मन में परमात्मा का स्वरूप ध्येय रूप में भासित होता हो तो निस्संदेह आत्मा में क्षयोपशम रूपी वासना भी परमात्मा के गुणों की ही होती है । वास्तव में ऐसी उच्च श्रेणी की भक्ति योगीजनों को ही प्राप्त होती है।

जिस भक्ति – भावना में मन, वाणी व काया की एकरूपता नहीं होती, वह सर्वोत्तम भक्ति नहीं गिनी जाती । परमात्मा की भक्ति से तो वीर्योल्लास प्रकटित होना चाहिए । साथ ही अलौकिक आनन्द की अनुभूति होनी चाहिए ।

परमात्मा की भक्ति से आत्मा स्वयं परमात्मा में परिवर्तित हो जाती है । परमात्मा के भक्तो सृष्टि के सभी जीव अपनी आत्मा सदृश लगते हैं और उसके हृदय में विशुद्ध प्रेम की रसधारा सदैव प्रकटित होने से शुद्ध चारित्र का गठन होता रहता है ।

वास्तव में रजोगुणी व तमोगुणी भक्ति के बनिस्बत सात्त्विक गुणी सतोगुणी भक्ति अनंतगुनी उत्तम है । परमात्मा के गुणों के साथ तादात्मय साथ भक्ति प्रकटित करने से हृदय रूपी क्षेत्र में शुद्ध प्रेम स्वरूप पुष्करावर्त मेघ की वृष्टि होती है । फलस्वरूप हृदय– धरा पर सदुपयोग रूपी असंख्य वृक्ष अंकुरित हो, झुमने लगते हैं ।

यह भला कैसे संभव है कि हृदय धरा पर सर्वोत्तम भक्ति रूपी वृष्टि हो और सद्गुणों की लता लहलहा न उठे ? जिस किसी की हृदय–धरा पर उत्तम ज्ञानु सत्य, त्यागादि के वृक्ष उग आयें हों तो समझ लेना चाहिए कि उसके हृदय पर उत्तम प्रभु–भक्ति की वृष्टि अवश्य हुई है ।

परमात्मा के असंख्य गुणों का चिंतन–मनन कर अपनी आत्मा में उन्हें साकार करने का पुरुषार्थ करना चाहिए। हम परमात्मा की इसी आज्ञा रूपी भक्ति के अनन्य उपासक हैं।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

५३. श्रद्धा–चिन्तामणि

किसी वस्तु के अनंत धर्म से केवल ज्ञानी भलीभाँति परिचित होते हैं। तथापि मतिज्ञानी वस्तु के अनंत धर्म को अच्छी तरह जानते हुए भी सर्वज्ञ वचन के प्रति रही अटूट श्रद्धा से अनंत धर्म में श्रद्धासिक्त होने के फलस्वरूप ज्ञानी माना जाता है। लेकिन मिथ्या दृष्टि ज्ञानी कदापि ज्ञानी नहीं माना जाता।
–श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

पादरा
दिनांक : ३०–३–१९१२

सम्यक्–दृष्टि जीव को संशय, विपर्यय एवं अनध्यवसाय से युक्त होता है। वह भी ज्ञान स्वरूप ही हैं। संशय का समावेश प्रायः कथंचित् रूहा में किया गया है। मिथ्यादृष्टि जीव ने ऐसा कौनसा अपराध किया है कि उसके संशय, विपर्यय व अनध्यवसाय को अज्ञान रूप माना जाय ? श्री विशेषावश्यक भाष्य की ३१९ वीं गाथा में बतलाया है कि मिथ्यादृष्टि का सर्वज्ञान अज्ञान रूप ही है। उक्त गाथा एवं ३२० वीं गाथा का मनन–चिंतन करने पर ज्ञान होता है कि उसका ज्ञान संशय स्वरूप होता है।

तथा च तद्गाथा

सदसद विसेसणाओ भवेदउ
जहिच्छिओ बलंभाओ।
नागफलाभाओ मिच्छदिट्ठिस्स
अन्नाणं।।३१९।।

एवं जाणइ सव्वं जाणई,
सव्वं च जाणमेगंति।
इय सव्वमयं सव्वं,
समदिट्ठिस्स ज वत्थु।।३२०।।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अज्ञानी सत् एवं असत् अनंत धर्म से युक्त पदार्थ को पहचानने में असमर्थ होता है। वैसे ही संसार के आशय...हेतुओं को सम्यक् प्रकार से परख (पहचान) नहीं सकता । इसी तरह वह मुक्ति के आशय... हेतुओं को सम्यक् तथा पहचानने में असमर्थ होता है।

एक आत्मा में अनंतानंत अस्तिधर्म निहित हैं और अनंत नास्ति धर्म भी हैं। फलस्वरूप आत्मा स्व एवं पर पर्यायों के माध्यम से युक्त सर्व जगतमय है।

एक सम्यक्दृष्टि जीव सब कुछ जान सकता है, जबकि मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीव उसी की तरह जान नहीं सकता। अतः जो एक जानता है वह सर्व जानता है और जो सर्व को जानता है, वह एक को जानता है।

वस्तुतः सम्यक्दृष्टि की श्रद्धा में यह भाव निहित है कि, 'सर्व वस्तुएँ सर्वमय हैं।' परिणामतः सम्यक्दृष्टि प्राप्त करनेवाले के लिए ऐसे संशय, विपर्यय एवं अनध्यवसाय को भी ज्ञान स्वरूप ही समझना चाहिए।

एक परमाणु में या एक आत्मा में सर्व लोकालोक वस्तु का समावेश होता है, श्री वीतराग देव के वचनों में सम्यग् दृष्टि ऐसी अखण्ड श्रद्धा रखता है। श्री वीतराग प्रभु का कथन सत्य है, ऐसा विश्वास–भाव सम्यग् दृष्टि के हृदय में होने से खाते–पीते, उठते बैठते आदि सर्वस्थानों में उसे ज्ञान होता है। उसके हृदय में प्रभु–वाणी के प्रति की श्रद्धा स्थिर होने की वजह से यदि वह पागल बन जाय तो भी ज्ञानी माना जाता है। अनंत धर्मात्मिक वस्तु के संशय, विपर्यय एवं अनध्यवसाय एक देश रूप होने से उसकी गणना भी ज्ञान रूप की जाती है।

किसी वस्तु के अनंत धर्म से केवलज्ञानी भलीभाँति परिचित होते हैं। तथापि मतिज्ञानी वस्तु के अनंत धर्म को अच्छी तरह जानते हुए भी सर्वज्ञ वचन के प्रति रही अटूट श्रद्धा से अनंत धर्म में श्रद्धासिक्त होने के फलस्वरूप ज्ञानी माना जाता है। लेकिन मिथ्यादृष्टि ज्ञानी कदापि ज्ञानी नहीं माना जाता।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

५४. काल का गणित

चक्षु अप्राप्त ऐसे कईं विषयों को ग्रहण
करते हैं। वैसे ही योग्य देश (स्थान)
में रहे हुए विषयों को भी ग्रहण करते हैं।
—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

पादरा
दिनांक : २–४–१९१२

नैश्चक अथविग्रह एक समय का है। जबकि जघन्य से व उत्कृष्ट से इहा एवं अपाय का काल अंतमुहूर्त है। इसी भाँति व्यंजनाग्रह व व्यावहारिक अथविग्रह इन दोनों का काल भी अंतमुहूर्त है।

धारणाकाल संख्याता एवं असंख्याता काल का है। अंतमुहूर्त की भी धारणा होती है। अविच्युति, स्मृति व वासना के भेद की धारणा तीन प्रकार की होती है, जिसमें से अविच्युति एवं स्मृति स्वरूप धारणाकाल अंतमुहूर्त का है और जो धारणा तदर्थ ज्ञानावरणीय क्षयोपशम स्वरूप वासना नामवाली है, वह असंख्यता वर्ष के आयुष्ययुक्त जीवों की असंख्याता वर्ष की है। और पल्योपलादि असंख्याता जीवों के असंख्यता वर्ष की है।

वासना एक प्रकार से स्मृति के बीज स्वरूप है। श्रोतेन्द्रिय प्रायः स्पर्शित शब्द–द्रव्य का ग्रहण करती है। जबकि घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय एवं स्पर्शेन्द्रिय आदि तीन इन्द्रियाँ स्पर्शित व आत्मप्रदेशों से गाढे चिपके हुए द्रव्य को ग्रहण करती हैं अर्थात् बद्ध एवं स्पष्ट ऐसे द्रव्यों को उपरोक्त तीन इन्द्रियाँ ग्रहण करती हैं।

चक्षु अप्राप्त ऐसे कईं विषयों को ग्रहण करते हैं। वैसे ही योग्य देश (स्थान) में रहे हुए विषयों को भी ग्रहण करते हैं।

श्रोत्रेन्द्रिय यह विज्ञान पटुतर है और घ्राणादिक तीन तो पटुतर विज्ञानत्व नहीं है। नयन लक्षादि योजन (जोजन) पर्यंत भलीभाँति देख सकते हैं। बारह योजन से आते मेघ–गर्जनादि स्वर को श्रोतेंद्रिय अच्छी तरह ग्रहण करती हैं। घ्राणेन्द्रिय,

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रसनेन्द्रिय एवं स्पर्शेन्द्रियांदि तीन इन्द्रियाँ नौ योजन से आते अपने–अपने विषयों को उत्कृष्टता के साथ ग्रहण करती हैं ।

नौ योजन से आये गंजयुक्त द्रव्य में रस का भी समावेश होता है। फलतः रसनेन्द्रिय उसे सरलता से ग्रहण करती है। जबकि बारह योजन की दूरी के उपरांत के विषयों को श्रोतेन्द्रिय आदि इन्द्रियाँ क्षमता के अभाव में ग्रहण नहीं कर सकती।

नयन को छोड, शेष इन्द्रियाँ जघन्य से अंगुल के असंख्यात् में स्थित विषयों को ग्रहण कर सकती हैं। अंगुल के असंख्यात् भाग में चक्षु का विषय नहीं। रज, मैल, गंदगी आदि बिलकुल पास में रहे पदार्थों को आँख देख नहीं सकती।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

५५. योग का त्रिकोण

व्यवहार में मानसिक चिंता का फल अर्थात् धर्म–ध्यानादि करना, विचार स्वरूप तथा वाणी–स्वाध्याय विधान फल देखने में आता है इस तरह मन व वचन आदि दो योगों को काया से अलग किया है।
–श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

पादरा
दिनांक : ३–४–१९१२

मन द्वारा होनेवाले ऐसे मति एवं श्रुत में पुद्गल मात्र निबंध का पूर्णतया अभाव है। जबकि इंद्रियों द्वारा होनेवाले मति एवं श्रुत में पुद्गल मात्र निबंधन नियत विषय परिणाम है। पंचेंद्रियाँ पुद्गल मात्र निबंध नियमवाली हैं।

प्रायः सभी वक्त गण काया के योग से शब्द–द्रव्यों को ग्रहण करते हैं और वचन योग से शब्द–द्रव्यों का विसर्जन करते हैं। जिससे मन वाग् द्रव्यों को ग्रहण करता है उसे कायिक योग की संज्ञा दी गयी है और जो मानसिक आवेग (संरंभ) द्वारा उक्त वाग्–द्रव्यों को छोडता है, वह वाचिक योग कहलाता है। साथ ही जिस से मनोद्रव्यों को चिंतायुक्त करता है वह मनोयोग है।

एक मात्र तनु योग ही उपाधि भेद के कारण तीन प्रकार से व्यवहारिक है। हाँलाकि व्यवहारतः देखा जाय तो सर्वत्र एकमात्र काय योग ही है। वास्तव में तनुयोग में मन एवं वचन का अंतर्भाव होता है। क्योंकि काय योग से केवल शब्द व मनोद्रव्य को ग्रहण किया जाता है। अतः प्राण एवं अपाय का व्यापार भी योग से भिन्न नहीं होता। अपितु उसका समावेश भी काय योग में ही होता है।

व्यवहार में मानसिक चिंता का फल अर्थात् धर्म–ध्यानादि करना, विचार स्वरूप तथा वाणी–स्वाध्याय विधान फल देखने में आता है। इस तरह मन व वचन आदि दो योगों को काया से अलग किया गया है।

जबकि प्राण एवं अपाय का फल काय योग से भिन्न नहीं है। अतः उसे काया से अलग नहीं किया गया।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वक्ता सर्व प्रथम जिस भाषा–द्रव्य को ग्रहण करता है उसे द्वितीय बार(समय) में छोड देता...तजता है और उसी तरह तृतीय बार ग्रहण किये गये भाषा–द्रव्य का चतुर्थ समय में परित्याग करता है।

प्रज्ञापना–सूत्र में ऐसा कहा गया है कि आमतौर से ग्रहण में समय का अंतर नहीं है। लेकिन शब्द–द्रव्य के विसर्जन में समयांतर है।

प्रथः बार में बिना निःसर्ग के भी ग्रहण का सद्भाव समाहित है। अतः ग्रहण स्वतंत्र है और विसर्जन परतंत्र है। क्योंकि ग्रहण किये गये शब्द–द्रव्यों को उक्त निर्धारित काल (ग्रहण के समयकाल) में वक्ता नहीं तजता। किंतु पूर्वानुपूर्व में ग्रहण किये गये शब्द–द्रव्यों का उत्तरोत्तर समय में परित्याग करता है।

औदारिक, वैक्रिय एवं आहारिक शरीरयुक्त जीव प्रायः शब्द–द्रव्यों को ग्रहण करता है और छोडता है। इस तरह सत्या, सत्यमृषा, मूषा एवं असत्यमृषा आदि चार प्रकार के भाषा–द्रव्यों को उपर्युक्त तीन शरीरयुक्त जीव ग्रहण करता है और तजता है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

५६. बिना बुलाये मेहमान

लेकिन उसे प्रकट किये बिना तो
आत्मा की पूर्ण सिद्धि नहीं हो सकती
—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

बडौदा
दिनांक : ४—४—१९१२

तार्किक शिरोमणि उपाध्यायजी महाराज श्री यशोविजयश्री 'श्रीपाल रास' में कहते हैं कि, छठवें गुणस्थानक के बनिस्बत सातवें 'अप्रमत्त' गुणस्थानक का काल (अवधि) विशेष है।

मन में निंदा, विकथा, अहं कारादि दोषों के उत्पन्न होते ही उन्हें जडमूल से निर्मूलन करना चाहिए। मानव स्वयं की आत्मा किन—किन दोषों से ग्रसित हैं, यह समझने में समर्थ हो जाता है तब तथाकथित दोषपुंज को छिन्न—भिन्न करने हेतु प्रयत्नशील रहता है। क्योंकि अपने में निहित दोष जान लेने के उपरांत भी उद्यम....पुरूषार्थ किये बिना उनका संहार (नाश) नहीं होता।

अंतर में रहे अहंकारादि दोषों के निर्मूलन हेतु तीव्र भावना उत्पन्न होनी निहायत आवश्यक है। हमारे हृदय में सद्गुणों के प्रति अत्यंत प्रेम भाव उत्पन्न होने पर अनायास ही दोषों के प्रति कतई रुचि नहीं रहती। साथ ही दोष की जडें खोखली होने लगती हैं और धीरे धीरे सर्व दोषों से मुक्ति मिल जाती है ।

स्वयं में सर्वाधिक दोष होने के उपरांत भी जो अपने को सर्वगुणसम्पन्न समझ लेता है। ऐसा व्यक्ति गुणों को उजागर (प्रकटित) करने हेतु उद्यमशील नहीं रहता।

हमारी आत्मा की गहराई में अनंत गुण सुप्तावस्था में रहे हुए हैं। लेकिन उन्हें प्रकाशित किये बिना आत्मा की पूर्ण सिद्धि असंभव है।

आगम—साहित्य, न्याय व व्याकरण का अध्ययन—स्वाध्याय कर पंडित हो सकते हैं लेकिन आगमाध्ययन करने के उपरांत मन में उत्पन्न होनेवाले क्रोध,

For Private and Personal Use Only

अभिमान, माया, मोह, लोभ निंदा, प्रपंच एवं ईर्ष्यादि विविध दोषों का जडमूल से निर्मूलन करने लाला मनुष्य अनंत गुना उत्तम...श्रेष्ठ माना जाता है।

प्रमादावस्था के हेतुओं का सर्वस्व परित्याग करने का उपदेश करनेवाले और अन्यजनों के सम्बन्ध में प्रमादावस्था में पंचायत करनेवाले लोग तो इस जगत् में कई मिल जाते हैं। लेकिन अप्रमत्तावस्था को धारण कर दूसरों के लिए आदर्शवश दोषों का निर्मूलन हेतु निमित्त बने, ऐसे महात्मा विरले होते हैं।

दोष दृष्टि के कारण अन्यों के मलिन चरित्र के जिनके मन पर संस्कार पडते हैं, ऐसे लोगों के जीवन में बिन बुलाये मेहमान की तरह अनेकानेक दोषों का समावेश हो जाता है। अतः ऐसे लोग अप्रमत्तावस्था की प्राप्ति अथवा उसकी स्थिरता करने में असमर्थ होते हैं। दोष–दृष्टि धारकों के समागम में जो आते हैं, ऐसे लोगों में अप्रमत्तावस्था का भाव प्रकट नहीं हो सकता।

अप्रमत्तावस्था में चित्त की स्थिरता हो जाने पर हृदय में शास्त्रों का सारांश अच्छी तरह प्रकट हो सकता है। अतः ऐसे अप्रमत्तावस्था धारक मुनिवरों के चरणों में हमारा, सदा–सर्वदा अभिवादन हो, नमन हो।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

५७. सद्‌गुण–चन्दन

ज्ञानी संतजनों की एकाध पल की संगति जो लाभ प्राप्त करने में समर्थ होती है, इतना लाभ करोड़ो अज्ञानी जीवों की संगति से भी प्राप्त नहीं हो सकता।

–श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

बडौदा
दिनांक : ५–४–१९१२

अमुक कारणों से कई बार कई लोग हमें प्रतिपक्षी....विरोधी प्रतीत होते हैं। फलतः उनमें रहे कितने ही सद्‌गुण भी दुर्गुण ही भासित होते हैं।

अपने विरोधी होते हैं। फिर भी यदि उनमें रहे गुणों का मूल्यांकन कर उनकी (सद्‌गुणों की) सराहना की जाय तो सज्जनता कायम रहती है।

जब तक कोई व्यक्ति हमारा प्रतिपक्षी नहीं होता तब तक उसमें रहे दुर्गुणों को भी अन्यजनों के समक्ष सद्‌गुणों के रूप में प्रदर्शित करने का हम सतत प्रयत्न करते रहते हैं। लेकिन जैसे ही वह प्रतिकूल...विरोधी बन जाय तब उसके सद्‌गुणों को भी दुर्गुणों के रूप प्रसारित करने का प्रयत्न किया जाता है। जबकि ऐसे लोग भी होते हैं, जो प्रतिपक्षी के सद्‌गुण एवं दुर्गुण दोनों का मूल्यांकन करते हैं। लेकिन सर्वोत्तम व्यक्ति प्रतिकूल परिस्थिति में भी निःस्वार्थ भाव से सब के सद्‌गुणों का सही मूल्यांकन करते हुए बार–बार उनकी प्रशंसा करता है।

वस्तुतः सद्‌गुणों का मूल्यांकन कर उनका मनन करने से आत्मा में प्रायः सद्‌गुणों का आर्विभाव होता है।

बालजीवों के प्रति सदैव गुणानुराग दृष्टि रहना प्रायः असंभव है। उत्तम पुरुष अनेक विपदा–वपित्तियाँ आने पर भी गुणानुराग दृष्टि धारण करते हैं। जबकि अज्ञानी जीव मोह–दृष्टि के संयोग से अनेक प्रकार के दोष निरीक्षण करने का व्यापार करते हैं ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ज्ञानी संतजनों की एकाध पल की संगति जो लाभ प्राप्त करने में समर्थ होती है, इतना लाभ करोडों अज्ञानी जीवों की संगति से भी प्राप्त नहीं हो सकता।

आयु एवं वेष से कभी पूज्यत्व प्राप्त नहीं होता। वैसे ही सद्‌गुणों के बिना आयु व लिंग मात्र से कभी पूज्यता प्राप्त नहीं हो सकती।

सत्ता एवं लक्ष्मी के धारक यदि विनय, विवेक गांभीर्य, उदारता, दयालुता व भक्ति आदि सद्‌गुणों से विरहित हों तो वे अन्यजनों को अनेक प्रकार की उपाधि प्रदान करने में समर्थ सिद्ध होते हैं।

विविध लोगों के विभिन्न मत परिलक्षित कर सहनशीलता धारण करनी चाहिए। यदि विभिन्न मत मतान्तर धारकों के प्रति द्वेष–भाव रखा जाए तो सत्यधर्म पालनार्थ आग्रही के मन में शांति कदापि प्रस्थापित नहीं होती। अरे, मत–सहिष्णुता नामक गुण धारण किये बिना विश्व के प्रत्येक मनुष्य के साथ सुख–शांति से रह नहीं सकते।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

५८. प्रशस्त राग

हमेंशा आत्म–साध्य को परिलक्षित कर सज्वलन क्रोध, माया, मान, एवं लोभ को प्रशस्य रूप में परिमत करने चाहिए।
– श्रीमद् बुद्धिसागर

बदौदा
दिनांक : ६–४–१९१३

वर्तमानकाल में सराग संयम है । परन्तु प्रशस्य रागादि के प्रति सद्भाव संयम कहलाता है । लेकिन अप्रशस्य रागादि के प्रति सद्भाव सराग नहीं कहलोता ।

संयम के भी असंरव्य भेद हैं । जिस राग व द्वेष से संवर तत्त्व सम्मुख होता उसे प्रशस्य राग–द्वेष कहा जाता है । अप्रस्य राग–द्वेष परिणाम को नाम रखने मात्र से वह नष्ट नहीं होता । कितुं देव–गुरु आदि शुभ आलम्बन का शरण–ग्रहण किया जाय तो ही अवश्य रागादि को प्रशस्य रागादि में परविर्तित किया जा सकता है ।

शुभ अपने चारोंओर शुभ निमितों की रक्षा–पंक्ति खडी कर दे । परिणामतः अशुभ परिणामों के संयोग प्राप्ति होने के बावजूद भी शुभ–परिणाम धारन किये जा सकते है. निमित्त के अभाव में मंगल–भावना की प्राप्ति कदापि नहीं होती । अतः मानव को चाहिए कि वह प्राध्यात्म ज्ञान की तीव्र परिपक्य दशा के तीव्र उपयोग से आश्रब के हेतुओ के संवर रूप में परिणत कयि जा सकते हैं ऐसा अवश्य होता है । अनुभव से देखने पर इस विषय पर श्रद्धा होती है ।

अत्मा का बाम्यगूज्ञान प्राप्त करने से उसमें उच्च कोटि का विवेक प्रकट होता है। फलस्वरूप आश्रव के हेतुओ को भी संवर रूप में परिणित होने की शक्ति प्रकह होती हैं।

अज्ञानी जन अध्यात्म ज्ञान की परपिक्व दशा के अहंत्व को मान कर यह न

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

समझे कि उन्हें आश्रव–हेतु संवर रूपमें परिणत होते हैं, कभी मथ्या विवाद नहीं करें । में परिणत हुए हैं, ऐसा मथ्या विवाद न करे ।

अनुभव की शाला का विद्यार्थी बनना कोई सामान्य बात नहीं हैं । मनुष्य मात्र का एक अनुभव ही वास्तव में उत्तरोत्तर अनेक अनुभव कराने में समर्थ होता है ।

फलतः प्रायः अतंरग एवं बाह्य चारित्र्य प्राप्ति करने हेतु प्रयत्नशील रहना चाहिए ढीक वैसे ही चारत्रि धारकों को सरगात्व का भूलकर भी कभी दुरपयोग नहीं करना चाहिए

हमेशा आत्म–साध्य को परिलक्षित कर संज्वलन क्रोध, माया, मान एवं लोभ को प्रशस्य रुप में परिणत करने चाहिए ।

आत्मा के शुद्ध धर्म का उपयोग धारणकर उसमें नित्यप्रति रमणता करनेवाले को उच्च परिणाम की धारा प्राप्त होती है । उसी तरह गीतार्थ गुरुदेव के प्रति राग धारण करने पर उसे आत्मा के आलम्बन स्वरूप में परिवर्तित कर सकते हैं । अंततोगत्वा आत्मा रूपी साध्य–रसिया का लक्ष्य तो वीतरागावस्था रूप होती है और वीतराग अवस्था के उपयोगी के लिए सराग संयम एक सोपान की तरह होता है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

५९. भाषा लोकोपकार के लिए

संस्कृत ग्रंथो का गुजराती आदि प्रादेशिक भाषाओं में भाषांतर किये बिना यदि गत्यंतर नहीं हैं तो ऐसी अवस्था में संस्कृत में ग्रंथ– लेखन कर सिर्फ पांडित्य– प्रदर्शन करने की दृष्टि अपनाना, वस्तुतः उचित कार्य नहीं है, ना ही किसी तरह योग्य है ।
– श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

बडौदा
दिनांक ८–४–१९१२

मस्तिष्क के कप्पे में किसी भी प्रकार की भाषा के शब्द संचित कर देने से कोई दार्शनिक नहीं कहलाता है । बल्कि संस्कृत भाषा को आत्मसात करनेवाला ही ज्ञानी माना जाता है । बैसे है गुर्जर भाषा का जानकार अथवा ग्रंथलेखन करनेवाला ही ज्ञानी ही सो बात नहीं हैं और नाही ऐसा कोई सिद्धांत है । किसी भी भाषा का ज्ञान अवगत करने के उपरांत भी ज्ञानी नहीं बना जा सकता ।

महज भाषा तो मनुष्य के ज्ञान रुपी वस्त्र हैं और ज्ञान के संकेत स्वरूपर जगत् में अनेकानेक भाषाएँ हैं ।

जिस देश में तत्कालीन परिस्थिति में जो भाषा जीवित... सार्वजनिक प्रसारण की एकमेव केन्द्र स्वरूप है । दूसरों को प्रतिबोधित करने के लिए उसी भाषा के माध्यम से ग्रंथ लेखन करने – कराने से पांडित्य की सतह में कभी नहीं आती । फलत : जैनाचार्यों ने इसी नियम... सिद्धांत को अपनाकर संस्कृत, प्राकृत व गुजराती आदि भाषाओं में प्रचुर मात्रा में ग्रंथलेखन किया है ।

किसी भी भाषा के माध्यम से सत्य तत्त्वों का उपदेश देना व कोई भी भाषा में सत्य तत्त्व मय ग्रंथ–सृजन करना ही पंडितवर्ग का वास्तविक पांडित्यि है ।

संस्कृत भाषीय ग्रंथों का गुजराती आदि प्रादेशिक भाषाओं में अनुवाद... भाषांतर करना यदि अत्यावश्यक हो तो ऐसी अवस्था में संस्कृत भाषा में ग्रंथ–लेखन कर सिर्फ पांडित्य – प्रदर्शन करने की दृष्टि अपनाना, वस्तुतः उचित कार्य नहीं हैं, ना ही किसी तरह योग्य है ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भाषा तो केवल संकेत स्वरूप होने के कारण देश व काल के संयोगवश विभिन्न विविध भाषाओं के वप में प्रकट होती हैं । वैसे ही सर्व जीव देश व कालानुसार जीवित... प्रसारित भाषा में कोइ इ भी बात भलीभाँति समझ सकते हैं । परिणाम स्वरूप तीर्थंकर भगवंत भी उसका अनुसरण कर प्रायः अर्ध प्राकृत मिश्रित भाषा में उपदेश प्रदान करते हैं ऐसा करने से उनके केवलज्ञान को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचती ।

प्राचीन भाषा एवं प्राचीन भाषा में आलेखित अमूल्य ग्रंथ–निधि का संरक्षण व संवर्धन करना कभी नहीं भूलना चाहिए । वक्कि उसके लिए सदैव सावजानी बरतनी चाहिए ।

भाषीय पांडित्य का कदापि अहंकार नहीं करना चाहिए । मस्तिष्क रूपी संदूकची में भाषा के शब्द रूपी दानों को भरना व मंगाने मात्र से ही यदि पांडित्य की प्राप्ति होती हो तो रेलगाडी को भी पांडित्य – प्राप्ति हो सकती है ।

वास्तव में शब्दों द्वारा विवेक – ज्ञान प्राप्त कर आत्मीय सद्‌गुण प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए । शुद्ध प्रेम, मित्रता, भावना, क्षमादि सद्‌गुण– प्राप्ति जिससें संभव बन जाए तो निहायत वह उक्त भाषा की सफलता मानी जाएगी ।

वैसे देखा जाय तो भाषा के बनिस्बत आंतरिक सद्‌गुणों की स्फूर्ति... स्फुरण विशेष महत्त्व रखती हैं । क्योंकि गुण– लालित्य की तुलना में भाषा – लालित्य का कोई महत्त्व नहीं हैं ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

६०. शिक्षा का उद्देश्य– सुसंस्कृत बनाना

कौए और कुत्ते के बच्चों की तरह किसी भाषा में गिट–पिट करने मात्र से ही किसी को शिक्षित मान लेने की भूल कभी नहीं करनी चाहिए ।
– श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

बडौदा
दिनांक : ६–८–९३

जो शिक्षा ग्रहण करने से राष्ट्र में सद्गुणी लोगों की उत्पत्ति होती है, वास्तव में वही शिक्षा सर्वमान्य हो, उत्तम कहलाती है ।

जिस राष्ट्र में विषय–वाल नादि को उत्तेजन देनेवाली शिक्षा प्रदान की जाती हो, ऐसा राष्ट्र अध : पतन के गहरे गर्त में गिरकर ही रहेगा ।

सामान्यतः दया, भक्ति, पवित्र प्रेम, विनय एवं सदाचार विहीन शिक्षा को शिक्षा नहीं कहा जा सकता ।जिसके सुविचार रूपी मन विकसित न होने पाहँ , बढिया शब्द बोलने की आदत न पडे और काया शुभ कार्यों में व्यापार युक्त न होवे उसे शिक्षा की संज्ञा नहीं दे सकते ।

भूल कर भी ऐसा संकुचित अर्थ कभी नहीं लगाना चाहिए कि यदि भाषा–ज्ञान के बल पर लिखना पढना आ जाय, इसका मतलब वह शिक्षित हो गया है । वैसे ही स्वच्छदताचारी उद्दंड प्रवृत्ति करनेवालों की गणना भी शिक्षित व्यक्तियों में नहीं की जा सकती ।

निज हृदय को अनेकविध सद्गुणों के माध्यम से विकसित करने पर वह सच्चे अर्थ में शिक्षित कहलाता है ।

मन, वचन व काया के योग को शुभ मार्ग में प्रवर्तित करने की शक्ति जिस–जिस अनुपात में प्राप्त होती है उसी अनुपात में संस्कारित उच्च शिक्षा कही जाती है।

कौए और कुत्ते के बच्चों की तरह किसी भाषा में गिट–पिट करने मात्र से ही किसी को शिक्षित मान लेने की भूल कभी नहीं करनी चाहिए। वास्तव में उत्कट

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दया, भक्ति, सत्य, पवित्र प्रेम, निरहंकार, परोपकार, उदार भाव, समानवृत्ति, दानवृत्ति, ब्रह्मचर्य, वैराग्य, विनम एवं विवेक के माध्यम से जिनका विकास नहीं होता ऐसों की गणना यदि साक्षरों में की जाती हों तो निस्संदेह व दानवीवृत्ति धारण कर सकते हैं ।

सद्गुण विहीन शिक्षा मसलन बकरी के गले में लटकता स्तन, जिससे न उने लाभ प्राप्त होता है, ना ही अन्य किसी को।

किसी भाषा के सर्वश्रेष्ठ साक्षर होने के उपरांत भी बिना उत्तम सद्गुणों के मानव स्व तथा विश्व को आनंदित जीवन का लाभ प्रदान करने में असमर्थ होता है । यदि, सद्गुणो की उच्च भावना से मन विकसित नहीं होता हो तो ऐसी शिक्षा की शक्ति से अन्यजनों को पीडित, दमित, व त्रस्त ही किया जा सकता है ।

वस्तुतः सर्वोच्च गुणों से दुनिया जन्नत (स्वर्ग) बन जाय अर्थात् हमेशा के लिए दुनिया से दुश्मनी, इर्ष्या, हिंसा, असित्य, चोरी, विश्वासघात, स्वार्थ, वैमनष्य, प्रपंच, क्रोध, अभिमान. माया, लोम, निंदा, धर्मयुद्ध व अज्ञान आदि दोषों का निर्मूलन हो, ऐसी शिक्षा का सर्वत्र प्रसार करने की अत्यंत आवश्यक्ता है ।

सहजानंदमय शांतरस की शिक्षा की वास्तव में अंतिम और सुगम शिक्षा है।

आत्मा के अनंतानंत गुण विकस्वर होवे ऐसा ध्यान एक प्रकार से समाधि स्वरूप अभ्यास ही है। अतः वह अंतिम आध्यात्मिक शिक्षा व ज्ञान. प्राप्त करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

६१. आत्म–सुख

एक बार आत्म–सुख का
अनुभव प्राप्त हो जाता है तो
संसार के पौद्गलिक सुख का
मोह अपनेआप मिट जाता है ।
– श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

बडौदा
दिनांक : ११–४–१९१२

पंचेन्द्रिय के साथ जब मन जुड़ता है तब इंद्रियाँ विषय–ग्रहण करती हैं । वैसे ही यदि मन को आत्मा के शुद्ध–विशुद्ध गुणों के साथ जोडा जाय तो बाह्य इंद्रियो का व्यापार (कार्य) प्रवर्तित नहीं होता ।

आत्मा के साथ प्रवृत्त मन वास्तव में आत्मिक सुख प्रकटीकरण में निमित्त स्वरूप परिणत होता है । इसी तरह आत्मा में परिणत भाव मन बाह्य दुःख के संयोग से दूर रहता है । अतः आत्मा में परिणत मन कर्म उपार्जन करने में शक्तिमान नहीं होता । लेकिन मोहादि कर्मों को निर्मूलन करने में अवश्य शक्तिमान होता है ।

वैसे ही बाह्य इंद्रियों के सम्बन्ध में भी राग द्वेष से प्रेरित हो, भाव मन परिणत होता है तब कर्म–बंधन होता है । लेकिन बाह्य इंद्रियों के सम्बन्ध में राग–द्वेष युक्त मन नहीं जुडता तब बाह्य विषय कर्म बिन्धन के एतु स्वरूप परिमत नहीं होते ।

वस्तुतः राग–द्वेष के परिणाम से विरहित मन मोक्ष का कारण है ।

जब आत्म–स्वरूप में रमणता की जाती है तब उसे भाव चरित्र कहा जाता है।

आत्मा में रमणता करते हुए प्रायः आनन्दरस की झांकी का अनुभव होता है। उक्त समय जीव के लिए त्रिभुवन के अलभ्य बाह्य सुख तृण समान भासित होते है।

एक बार आत्म–सुख का अनुभव प्राप्त हो जाता है तो संसार के पौद्गलिक

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सुख की स्पृहा (चाह) अपनेआप छूट जाती है ।

पंचेदियों के साथ जब निस्वार्थ भाव से विश्व के श्रेय : हेतु मन जुडता है और पारमार्थिक कृत्य संपन्न होते हैं, तब अनायास ही निष्काम कर्मयोगी की अवस्था प्राप्त होती है ।

अलबत्त, पांच इंद्रियों का व्यापार हुए बिना नहीं रहता, ऐसी स्थिति में यदि कर्म–बंधन न हो, इस तरह निखालिस मन से कार्य को अंजाम दिया जाय तो उसके फल स्वरुप विश्व एवं स्वयं की उन्नति अवश्य कर सकते हैं ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

६२. युग को पहिचानो

वस्तुत : वर्तमान युग आगेकूच
करने का है, बल्कि हाथ पर हाथ
धरे बैठे रहने का नहीं है। अरे, जो
प्रयत्न करता है, वही सिकन्दर होता है।
—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

बडोदा
दिनांक : २२–४–१२

वास्तव में नव युग का प्रारम्भ नूतन विचारों से होता है । गतिशील युग में मानव को भी भाग–दौड करनी चाहिए, बल्कि दुनिया की रफ्तार में पिछडना नहीं चाहिए ।

पुराना सो सोना और नया सो पीतल ऐसी समझ से कभी काम नहीं लेना चाहिए । ठीक वैसे ही नया सो अच्छा और पुराना सो बुरा मानने की गलती भूल कर भी नहीं करनी चाहिए । पुराने में जो अच्छा है.... सत्य है, उसे ग्रहण कर अभ्युदय– मार्ग पर दृढ रह, निरंतर आगे बढते रहना चाहिए ।

पुराने व नये विचारों का प्रतिपादन करने हेतु अलग–अलग पंथ खडे नहीं करने चाहिए बल्कि प्रायः नये–पुराने की तुलना करनी चाहिए और उन्हें जंजीर के अंकुडे की तरह तरतीब से लगाकर हमेशा उन्नति क्रम में आगे कदम बढाते रहना चाहिए । सभी सम्बंन्धि विचारों को अपेक्षा अंकुडे से व्यवस्थित जोड कर उनकी एक वैचारिक श्रृंखला बनानी चाहिए ।

वस्तुतः वर्तमान युग आगेकूच करने का है, बल्कि हाथ पर हाथ धरे बैठ रहने का नहीं है । जो सिर पर हाथ रखे बैठ रहता है, उसका भाग्य भी बैठ जाता है और जो गतिशील है, उसका भाग्य प्रायः गतिशील होता है । अरे, जो प्रयत्न करता है वही सिकन्दर होता है ।

नये पुराने विचारों के मतभेद में उलझ ने बजाय उनके प्रति सहिष्णुता वृत्ति धारण कर सभी लोगों में रहे सामान्य विचारों में जुड कर कार्यों को अंजाम देना

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चाहिए ।

स्मरण रहे, चीखने–चिल्लाने से कभी उन्नति नहीं होती, अपितु सतत कार्य करते रहने से प्रगति होती है । यदि जैन समाज जमाने की हवा से बेखबर रह, पिछड़ते रहेंगे तो आगे बढ़े दस जैसे माने जाएँगे ।

मानाकि पुराने पंथी (पुराने लोग) जमाने से दो कदम आगे चलते लोगों की वर्तमानकाल में निंदा करेंगे, उन्हें नाम रखेंगे और सरेआम बदनाम करेंगे । फिरभी भावी पीढी (समाज) के लिए वे श्रद्धा स्थान प्रेरक शक्ति सिद्ध होंगे ।

हालाँकि कई बाबत में नये–पुराने विचारों का संमिश्रकार कार्य करने की आवश्यक्ता है । याद रखना, आधुनिक युग ज्ञान न अन्वेषण का है ।

यदि संकुचित दृष्टि के लोग अर्वाचीन काल को नहीं पहयानेंगे और उसके साथ कदम से कदम मिला कर नहीं चलेंगे तो पिछड जाएँगें । अतः सद सद् विवेक से काम ले, वर्तमान युग को पहचान कर असका अनुसरण करना चाहिए।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

६३. सहजानन्द

आत्मा को आत्म स्वरूप में आत्मसात् रस प्राप्त कर सकते हैं। कई महात्माओं ने पाताल-कुएँ के प्रवाह की भाँति इंद्रियातीत आत्मानंद अनुभव किया है। वर्तमान में भी ऐसा ही स्वर्गीय आनंद अमुक अंश में प्राप्त कर सकते हैं। अध्यात्मज्ञान से परमात्मा जैसा अक्षय सुख का आस्वाद ले सकते है और ऐसा सुख आत्मा में ही निहित है। ऐसी स्थिति में उसके लिए भला वाह्य जगत मे मिथ्या प्रयत्न क्यों करने चाहिए।

— श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

बडौदा
दिनांक : १३-४-१९१२

धर्म की नींव अध्यात्मज्ञान है। अतः अध्यात्मज्ञान के ऐरावत पर आरुढ मानव सुख में सदैव निमग्न रहता है।

जिन्हें शुष्कता आनंद विरहित रसमय ऐसे अध्यात्मज्ञान की प्राप्ति होती हैं, निसंदेह उनकी मानसिक सृष्टि वास्तव में शुक्ल लेश्या के संयोगवश स्फटिक रत्न की भाँति निर्मल, पवित्र होती है।

मानव-मन में अध्यात्मज्ञान परिणत होने से कृष्णादि लेश्याए विद्यमान नहीं रहतीं। वस्तुतः जिसे अध्यात्मज्ञान की प्राप्ति हो जाती है, वह सदैव के लिए आत्म-सृष्टि का विलासी बन जाता है और देवी-देवताओं के विहार के बनिस्बत उसका विहार अत्यंत आनन्दमय होता है।

अध्यात्मज्ञान प्राप्त करने से सर्व प्रकार के दोष व अरिष्ट टालने की बुद्धि प्रकट हो सकती है। जो व्यक्ति आत्म-श्रद्धा एवं आत्म-शक्तियों को विकस्वर करने का कार्य करता है, वह सर्व मानव ... सर्व जीवों के दय में प्रवेश कर सभी को स्वयं के निकट... समीप ला, उन्हें महान लाभ से लाभान्वित कर सकता है।

लयमुच जिसके जिसके हृदय में अध्यात्मज्ञान की गंगा निरंतर पूप्रवाहित है, एण्डो पाप रुपी मल अपनेआप जुल जाता है अर्थात् उसका जीवन निर्मल... पवित्र बन जाता है।

अध्यात्मरस की शीतलता वास्तव में अंतर के एर्व पापों को जोने में समर्थ है। सिखिल ब्रह्मांड में अध्यात्मज्ञान के विचार प्रसारित होने से मानव जाति

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आत्मिकानंद सम्मुख गमन करने में शलिमान होती है ।

अध्यात्मज्ञान रुपी सूर्यकिरणों से अहं ममत्त्व रूपी बर्फिली चोटियां क्षणमात्रे में दवएत हो जाती है और आत्मा रुपी व्योममंडल मं शोक, चिंता न आवेग–आक्रश के बादल कही द्रष्टि गोचर नहीं होते ।

वस्तुत : आत्मा नित्य ज्ञान–प्रकाश उदित है । अतः आत्म–ज्ञान को आत्मसात कर आत्म–जर्म में परिगत होने पर आत्मा का आनंन्दरस प्रकटित हुए बिना नहीं रहता।

परिगामतः विश्व में मरजिया गोताखोर बन, आत्मा के आनन्दरस का पान कर आत्म भावसे जीवित रहना चाहिए । क्योंकि आत्मा के आनन्दरस का पान करनेवाले जो कुछ भी करते हैं और कहते हैं, उनमें साध्य शून्य द्रष्टि कदापि नहीं होती।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

६४. आत्मवत् सर्व भूतेषु

मानव भले ही किसी भी दर्शन का
अनुरागी..... प्रेमी हो, लेकिन आखिर
है तो वे भी आत्माएँ ही । अतः ऐसी
प्रवृत्ति कदापि नहीं करनी चाहिए,
जिससे उक्त आत्माओं को शोक, भय,
आवेग व संताप पहुँचे ।
– श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

बडौदा
दिनांक : १४–४–१९१२

अध्यात्मज्ञान से हमारी द्रष्टि विशाल... विराट् बनती है । साथ ही उसके माध्यम से धार्मिक आदि अनेकानेक क्रियाओ में रही विभिन्नता के उपरांत भी प्रत्येक क्रिया में रहे सात्त्विक रहस्य को सम्यक् रीत से आकृष्ट कर सकते हैं ।

प्रत्येक आचार्य केविचारों का केंद्र बिंदु क्या है, यह ज्ञात किये बिना उनकी विभिन्न उपदेश श्रेणी की पुस्तकों का पठन करना निहायत कठिन कार्य है । यदि संकुचित द्रष्टिलोग को विशालता में परिवर्तित करना हो तो अध्यात्म– शास्त्र आदि अनेकानेक शास्त्रों का अध्ययन मनन कर सम्बन्धित प्रत्येक ग्रंथकर्ता के आशयों को खोज निकालना परमावश्यक है । सर्व प्रकार के ग्रंथो में रहे सारांश को ग्रहण करने की शक्ति व क्षमता प्राप्त करनी चाहिए ।

आधुनिक युग गुणानुरागी दृष्टि अपना कर प्रत्येक में से सारांश ग्रहण करने का संस्कार देता है। विश्व रूपी विद्यालय में से अनेक प्रकार का ज्ञान प्राप्त कर सकते है।

जगत में गुण व अवगुण दोनों हैं। अतः अवगुण देखनेवाले जीवन में अवगुण ग्रहण करते हैं और सद्गुणों के अनुरागी सद्गुण।

वस्तुतः आत्मा ही परमात्मा है। इस बात का निश्चय होते ही हृदय में अद्भुकत उत्साह का संचार होता है और जिस बाबत की रुचि प्रदर्शित की जाती है, उसमें सुदर प्रवृत्ति कर सकते हैं।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आत्मा में परमात्मत्त्व का प्रभुत्व हैं। उसे प्रकटित करने के असंख्य अवसर है। सर्व जीवों में भी परमात्मत्त्व का प्रभुत्व है। अतः किसी के प्रति धर्म भेद या धर्म द्वेष धारण न करते हुए उसकी आत्मा में रहे असंख्य सद्‌गुणों के प्रति उसे आकर्षित करना चाहिए।

मानव भले ही किसी भी दर्शन का अनुरागी...प्रेमी हो, लेकिन आखिर है तो वे भी आत्माएँ। अतः ऐसी प्रवृत्ति कदापि नहीं करनी चाहिए जिससे उक्त आत्माओं को शोक, भय, आवेग व संताप पहुँचे।

विश्व की समस्त आत्माओं को आत्म–दृष्टि से देखनेवाला ऐसा विशाल दृष्टि धारक मानव वास्तव में जैन दर्शन की विशालता का लाभ सब को देने में समर्थ होता है।

जैसे जैसे व्योम मंडल में ऊँची और ऊँची
उडान भरने में आती है वैसे वैसे पृथ्वी पर
रहे गहरे गड्‌ढे और उत्तंग पर्वत–शिखर
आपस में गले मिले दृष्टिगोचर होते हैं। ठीक
उसी तरह आत्मा का उच्च श्रेणी का अनुभवज्ञान
ज्यों ज्यों प्रकटित होता है त्यों त्यों पूर्व में माने हुए
अल्प– स्वल्प मतभेद अथति् ऊँच–नीचत्व प्रतिभासित
नहीं होता।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

६५. निश्चय और व्यवहार नय

आत्मिक सद्‌गुणों का प्रकाश फैलाने में प्रवृत्ति करने पर मनुष्य सही अर्थ में आराधक बन सकता है। जो व्यक्ति अपने जीवन में सद्‌गुण धारण करता है, उसका व्यवहार अपनेआप सुशोभित होता है।
– श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी

पादरा
दिनांक : १६–४–१९१२

जहाँ महज नीति विषयक उपदेश के अनुसार आचार–विचार में सद्‌वर्तन नहीं होता, ऐसा व्यवहार हरमि व्यवहार नहीं कहलाता। कई लोग उपदेश देने व बातें बनाने में देव सदृश होते हैं। लेकिन यदि उनके आचरण की जाँच–पडताल की जाय तो ज्ञात होता है कि वह सिर्फ वाणी–वीर है। वास्तव में जिस व्यवहार में नीति का पुट नहीं होता, वह केवल व्यवहार हैं।

जो लोग एकाँतिक व्यवहार को पुष्ट मान, निस्वय धर्म का सरेआम तिरस्कार करता है, निस्संदेह उसे पेशावर व्यवहारिक की संज्ञा देनी चाहिए। व्यवहार व निश्चय नय के एकांतिक अनुरागी.... भिन्न रागी हो, खंडन– मंडन के दलदल में गिरने से कुछ हाँसिल नही होगा, ना ही कुछ प्राप्त होनेवाला है।

व्यवहार एवं निश्चय नय के प्रति श्रद्धा धारण कर सत्य, प्रामाणिकता व आदर्शवृत्ति जैसे सद्‌गुणों से जीवन श्रेष्ठ बनाना चाहिए।

यदि कोई व्यवहार व्यवहार की रट लगाता रहे लेकिन मउज व्यवहार मान कर नैतिक सद्‌गुणों से आत्मा को सर्वश्रेष्ठ नहीं बनाता तो उससे कुछ होनेवाला नहीं है। वैसे ही कोई निश्चय निश्चय की अलख जगाता रहे, लेकिन नीति आदि सद्‌गुणों से निजात्मा को सर्वश्रेष्ट नहीं बनाता। ऐसा व्यक्ति निश्चय नय का एकांतिक पक्ष ग्रहण कर आत्महित साध नहीं सकता।

आत्मिक सद्‌गुणों का प्रकाश फैलाने में प्रवृत्ति करने पर मनुष्य सही अर्थ में आराधक बन सकता है। जो व्यक्ति अपने जीवन में सद्‌गुण धारण करता है, उसका

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

व्यवहार अपने आप सुशोभित होता है।

सत्य, शुद्ध, प्रेम, भक्ति, दया, परोपकार आदि सद्गुणों को विकसित करने का प्रयत्न करना चाहिए। वैसे ही मार्गानुसारी गुण धारण करने से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। मार्गानुसारी गुणों का कोई अता–पता न हो और सम्यक्त्व गुण के सामने अभिमान करना, निहायत बुरी बात है और ना ही योग्य है।

सर्वगुणों के पहले मार्गानुसारी गुण ग्रहण करने ही आवश्यकता है। सर्व प्रथम मार्गानुसारी गुणों का उपदेश देकर मनुष्य को योग्य बनाने के पश्चात् सम्यक्त्वादि गुणों के प्रति आदर करना चाहिए अर्थात् जीवन में अपनाना चाहिए।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री अरुणोदय फाउन्डेशन

SHREE ARUNODAYA FOUNDATION

AHMEDABAD • BOMBAY • • • BANGALORE • MADRAS

For Private and Personal Use Only